॥ ॐ ॥

श्री गणेशायनमः

॥ वेदान्तसिद्धान्त मुक्तावली ॥

॥ टीका ॥

बाल-बोधिनी उमानन्दी पददीपिका

॥ भाषा भाष्य ॥

जिसमें

मूल कारीका पदच्छेद अन्वय शब्दार्थ भावार्थ

विकल्पार्थ संक्षेप में है।

और क्षेपक स्वअनुभव कृत अभ्यासन विधि तीसरा भाग

चौथा भाग उपासना कांढ पांचवां भाग योग

रहस्य देखने योग्य है ?

तावद्गर्जन्ति शास्त्राणि जम्बूकाविपिनेयथा ।
न गर्जन्ति महाशक्तिर्यावद्वेदान्तकेशरी ॥१॥

जिसे

ब्रह्मनिष्ठों के उपकारार्थ

[illegible] कामता प्रसाद एच० एम० बी०—कलकत्ता

[illegible]—बाई का बाग ने प्रकाशित

किया

{मूल्य [illegible]}

Printed & Published by B. Sheo Shankar Lal, Cambington Printing Works, Allahabad.

क्रिया

प्रथम बार ५०० } { मूल्य २)

Printed & Published by B. Sheo Shankar Lal, Cannington Printing Works, Allahabad.

श्री गणेशायनमः

॥ वेदान्तसिद्धान्त मुक्तावली ॥

॥ टीका ॥

बाल-बोधिनी उमानन्दी पददीपिका

॥ भाषा भाष्य ॥

जिसमें

मूल कारीका पदच्छेद अन्वय शब्दार्थ भावार्थ
विकल्पार्थ संक्षेप में है।
और क्षेपक स्वअनुभव कृत अभ्यासन विधि तीसरा भाग
चौथा भाग उपासना कांढ पांचवां भाग योग
रहस्य देखने योग्य है ?

तावद्गर्जन्ति शास्त्राणि जम्बूकाविपिनेयथा ।
न गर्जन्ति महाशक्तिर्यावद्वेदान्तकेशरी ॥१॥

जिसे
ब्रह्मनिष्ठों के उपकारार्थ

डाक्टर कामता प्रसाद एच० एम० बी०—कलकत्ता
६६—बाई का बाग ने प्रकाशित
किया

प्रथम बार } 500
{मूल्य २)

Printed & Published by B. Sheo Shankar Lal, Cannington Printing Works, Allahabad.

॥ भूमिका ॥

॥ गुरु स्तुति ॥

"नातः परमस्ति"

"ब्रह्मानन्दं परम सुखदं केवलं ज्ञान मूर्ति"
"द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्वमस्यादि लक्षणम्"
"एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधी साक्षि भूतं"
"भावातीतं त्रिगुण रहितं सद्गुरुं तन्नमामि"

सर्व सुख आत्म जिज्ञासु पाठक जनों को विदित हो कि यह सर्व वेदान्त ग्रन्थों का सार भूत महा ग्रन्थ (वेदान्त सिद्धान्त मुक्तावली कारीकावली) श्री मत्परम हंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ श्री स्वामी पूज्य पाद ज्ञानानन्द जी के शिष्य श्री स्वामी प्रकाशानन्द जी के द्वारा इस मनुष्य लोक में प्रगट हुई है, अतएव यह वेदों का अंत शिर मुक्ति के देने वाली है। अर्थात् आत्मा इस ग्रन्थ के विचार से कल्पित बन्धनों से मुंचित होकर आनन्द रूपता वास्तविक स्वरूप को प्राप्त होता है ॥

और यह ग्रन्थ "ब्रह्म संस्थ ऽमृतत्वमिति" अमृतत्व ब्रह्म संस्था, के प्राप्त कराने वाला है ॥ "एतदालम्बनं श्रेष्ठ मेतं दालम्बनं परम्" यही ब्रह्म संस्था का आलम्बन श्रेष्ठ है और यही आलम्बन परम आलम्बन है ॥ "एतदालंबनं ज्ञात्वा यो यदिच्छन्ति तस्य तत्" इस आलम्बन को जान कर (निरिच्छ हो जाता है) परंतु कदाचित् जो कुछ इच्छुक इच्छता है तिसको वह प्राप्त होता है ॥ इत्यादि श्रुतियों से संन्यासियों करके विचारनीय और श्रुतियों उक्त ब्रह्म संस्था के प्राप्ति कराने में सर्व ग्रंथों से उत्तम इस ग्रंथ का आलम्बन है, जो कि केवल ब्रह्म आत्मा की एकता का बोधक और दृश्यमान जगत् के मिथ्यात्व का प्रतिपादक होने से सर्व ग्रंथों में सर्व वादों में जो कि आभासवाद, अवच्छेदवाद, दृष्टिसृष्टिवाद, सृष्टि दृष्टिवाद, बिम्बवाद, प्रति बिम्बवाद इत्यादि वादों में श्रेष्ठ वेदान्त का शिर; आजात वाद का मुख्य ग्रंथ है ॥

और जो कोई ऐसे कहें कि वेदान्त के सर्व ही ग्रन्थ ब्रह्म आत्मा के अभेदता के व धक हैं, फिर इसमें क्या विशेषता है, तो तिसका यह समाधान हैं कि अन्य जो ग्रंथ हैं, सो ब्रह्म आत्मा के अभेदता के बोधक अवश्य हैं। कि अन्य जो ग्रन्थ हैं, सो ब्रह्म आत्मा के अभेदता के बोधक अवश्य है परन्तु उनमें सृष्टि का कर्म और ईश्वरादि का प्रतिपादन जन्म मरणादि व्यवहार का कथन अन्य २ प्रसंग भी हैं। और इस ग्रंथ में केवल अजात सिद्ध किया है। अतएव यह ग्रन्थ केवल ब्रह्म आत्मा के अभेद रुप आजात का प्रतिपादक होने से सर्व ग्रन्थों में श्रेष्ठ है ॥

अतएव उक्त हेतुओं से इस ग्रन्थों को सर्व ग्रन्थों का मुख्य होने से (२४) चौबीस कारीका का पूर्वार्द्ध और [२४] कारीका का उत्तरार्द्ध जो दो भाग

और तिस दोनों भागों का भूमिका का कर्ता मूलग्रंथकार श्रीस्वामी प्रकाशानन्द जी तिनके शिष्य श्रीनानाजी दीक्षित कृत इसके भूमिका के अर्थ बोधक देव वाणी संस्कृत टीका है, सो सम्यक् प्रकार संस्कृत विद्या के अभ्यास बिना और किसी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु आचार्य से अध्यय किये बिना साधारण पुरुषों को आती नहीं है। और तैसे ही जो केवल दीक्षित जी कृत टीका के अक्षरा-नुसार है जो एक लाहौर निवासी निर्मल महात्माजी कृत अक्षरार्थ भाषाटी का तिसको भी बहुविस्तारित और श्लोकों के संबंध की गुप्तता और शब्दार्थ|अन्वय पदच्छेद के अभावता से यथार्थ जानना सर्वसाधारण मनुष्यों को सुगम नहीं है॥

इस हेतु से मैं श्रीपरमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीसरजू पारगत मझवली राजधानी से पंच कोशनैऋत में श्रीसरजू तट बरहज नग्र निवासी श्री १०८ श्र स्वामी अनन्त जी पूज्य पाद का अल्पज्ञ शिष्य [उमानन्द] नामक परमहंस उक्त मूलग्रंथकार के भूमिका अनुसार और दीक्षित जी के टीका अनुसार [बाल-बोधिनी उमानन्दीपदद्दीपिका भाषा.भाष्य] नामक टीका करता हूं॥

इस टीका करने में यह भी हेतु है, कि वेदान्त के ज्ञान-सरोवर में स्नान करने के निमित संस्कृत का ही घाट सर्वोतम है। परन्तु संस्कृत से रहित अधिकारियों को उस शुभ्र सलिल तक पहुंचना अति कठिन जानकर [निर्मल महात्मा जी] ने भाषा टीका रूप घाट किया है, सो भी भाषा होते हुये संस्कृत के समहीं है॥

इस हेतु से संस्कृत रहित आत्म जिज्ञासु दोनों टीकाओं से निरास होकर पढ़ने और विचारने से उत्साह रहित होने भये। परन्तु इस ग्रन्थ को वेदान्त का शिर आजात वाद के युक्ति का उत्तम ग्रंथ होने से सर्व को लालसा थी कि कोई ऐसी टीका होती जो कि मूल्य का पदच्छेद अन्वय शब्दार्थ श्लोकों का संबंध भावार्थ संक्षेप विकल्पार्थ के साथ, तो हम सर्व कालालसा विचार से पूर्ण हो जाती। उनको लालसा इस ग्रन्थ में इस महत्व पर थी कि महात्माओं से इस ग्रन्थ को सुना करते थे कि [वेदान्त सिद्धान्त मुक्तावली] में प्रति श्लोक में ब्रह्म आत्मा का शब्द का प्रयोग है जिसका पाठ निदिध्यासन रूप है, और इसका विचार समाधि के आनन्द रूप है॥

ऐसी अधिकारिओं की लालसा देखकर प्रयाग से पांच कोश दक्षिण दिशा में श्रीजमुना जी के दक्षिण तट पर नग्रवार ब्राह्मणपूर में वास करके संवत् १९८३ कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को ग्रंथ का टीका गुरु महात्माओं का वंदन करके पदच्छेद अन्वय शब्दार्थ भावार्थ विकल्पार्थ श्लोकों के संबंध के साथ हरिद्वार काशी के मध्य जो अतिसरल साधु भाषा तिस भाषा में लिखना आरम्भ किया और गुरू महात्माओं के स्मरणता से कोई विघ्न बाधित न हुई, पूर्वार्द्ध प्रथम भाग समाप्त करके द्वितीय भाग उत्तरार्द्ध समाप्त कर अपने अल्प मति के अनुसार क्षेपक तृतीय भाग अभ्यासन विधि रच कर चतुर्थ उपासना कांड आरम्भ किया जिसमें अति सुगमता से निर्गुणरूप [ॐकार] का [अहंग्रह] उपासना और फल कथन है। और मन्द अधिकारियों के निमित सगुणरूप का उपासना भक्ति को प्रक्रिया कथन है॥ और.पांचवां भाग योग

रहस्य अति उत्तम रचित है जिसको साधारण मनुष्य भी कर शक्ते हैं ॥ इस प्रकार से पाँच भाग में यह ग्रन्थ संवत् १९८३ मार्ग शुक्ल दशमीं मङ्गलवार शुभ योग रेवती में समाप्त हुई ॥

॥ सर्व सज्जनों से साधारण विनय ॥

मुझ अल्प बुद्धि करके कहे हुये इस [वेदान्त मुक्तावली] के भाषा भाष्य में कछु शब्दों की त्रुटी और अशुद्धी अनुचित कथन हो तिसको सर्व विवेकी ज्ञानी पाठक जन क्षमा करके सुधार लेवें इति ॥

॥ सूचना इस भाषा भाष्यान्तर वर्ण व चिह्नों की ॥

" " इस चिह्न में भाषान्तर मूल्य श्रुति ॥
( ) इस चिह्न में भाषान्तर संस्कृत पद सूत्र अन्य भी प्रमाण ॥
(—) इस चिह्न में पदच्छेद ॥
(सि) इस वर्ण से सिद्धान्ती [वेदान्ती] का कथन ॥
(वा) इस वर्ण से वादी का कथन ॥
(प्र) इस वर्ण से प्रश्न ॥ (उ) इस वर्ण से उत्तर ॥
(स) इस वर्ण से समाधान ॥ (श्रु) इस वर्ण से श्रुति का कथन ॥

॥ इतिहास चिह्न सूचना ॥

यह ग्रन्थ पंच भाग करके प्रणीत है, जिसके दो भाग में मूल्य ग्रन्थ है, और तीन भाग क्षेपक हैं, जिसमें मूल्य का प्रथम भाग वादियों के खंडन द्वारा सिद्धान्त को सिद्ध किया है, सो संशय विपर्यय को दूर करके सिद्धांत को निश्चय कराता है। और द्वितोय भाग उत्तार्द्ध सिद्धांत जो आत्मानन्द तिस आनन्द को शंका समाधान के द्वारा दृढ़ निश्चय कराकर जीवन मुक्ति के आनन्द को प्राप्त कराता है। और त्रितीय क्षेपक का अभ्यास भाग अति सरल अभ्यास की प्रकृया के व्याख्यान द्वारा अति चञ्चल चित्त को शान्त करके आत्मानन्द का भाग उपासनाओं के अति सुगम साधन और नियम और प्रकृया के कथन द्वारा निर्गुण ब्रह्म का वाचक [ॐकार] के [अहंग्रह] अभेद उपासना के प्रति पादक, साक्षात् ज्ञान प्राप्त कराकर मुक्त कराता है। और कनिष्ट अधिकारियों का सगुण ब्रह्म के सुगम और उत्तम उपासना और भक्ति के कथन द्वारा परम्परा से मुक्ति के आनन्द [अब्धि] समुद्र में मगन कराता हैं। और पांचवा भाग योग रहस्य अति सुगम योग के द्वारा [योगस्यचित्त वृतिनिरोधः] चित्त के वृति को निरोध कराकर समाधि के आनन्द को देता है ॥

फिर प्रथम द्वितीय भाग जो [वेदान्त मुक्तावली] का मूल्य मात्र [५८] अट्ठावन कारीका, और चतुर्थ भाग [पंचीकरण] के मूल्य मात्र के सूत्रों का नित्य निरन्तर पाठ कर्ता और टीका का विचार कर्ता गुरु के दया से इस लोक में सुख का अनुभव करके अन्त में मुक्त हो जावेंगे ॥

उमानन्द १५-५-२९

ॐ
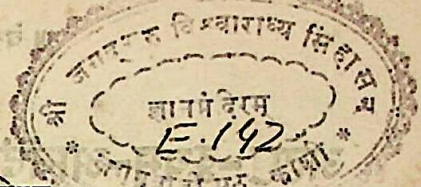
॥ श्रीगणेशायनमः । श्रीगुरुभ्योनमः ॥

॥ हरिः ॐ परमात्मनेनमः ॥

॥ वेदान्त सिद्धान्त मुक्तावली ॥

॥ उमानन्दी पद दीपिका ॥
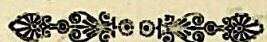
॥ भाषा टीका ॥

॥ मङ्गलाचरणं ॥

श्रीगणेशंनमःकृत्वा परमानन्दंशङ्करम् ।
मयाउमाआनन्देन कृयतांपद दीपिका ॥१॥
जगउत्पतिस्थितिंचैव लयं च पुनः पुनः ।
सत्वभेदप्रवक्षामि येनसर्वमिदं ततम् ॥२॥
समूलंपदच्छेदं च अन्वय शब्दार्थस्तथा ।
संग्रह भावार्थचैवविकल्पार्थं च पुनःपुनः ॥३॥
भाषा अर्थकथिस्यामि बालबोधाय हेतव ।
वे श्रमेन भविषन्ति वेदान्तेषु विचक्षणाः ॥४॥
अधितवेदशास्त्राणि पूराणानि अनेकसः ।
वेदशिरोनजानाति तस्यवालःप्रकृतिता ॥५॥

॥ पुर्वार्द्धकारीका प्रारम्भः ॥

सि—अदृष्टदृयमानन्दमात्मानं ज्योतिरब्ययम् ।
विनिश्चित्यश्रुतेःसाक्षाद्युक्तिस्तत्राभिधीयते॥१॥

॥ पदच्छेद ॥

अद्दष्ट-द्वयम्-आनंदं-आत्मानं-ज्योतिः-अव्ययम् ।
विनिश्चित्य-श्रुतेः-साक्षात्-युक्तिः-तत्र-अभिधीयते ॥

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

आत्मानं —	आत्मा को	अभिधीयते —	कथन होती है
श्रुतेः —	श्रुतिउपनिषद से	अव्ययम् —	अव्यक्त (नित्य)
साक्षात् —	साक्षात्कार	ज्योतिः —	प्रकाशरूप
विनिश्चित्य —	निश्चय करके	आनन्दं —	आनन्दरूप
तत्र —	तिस आत्मा में	द्वयम् —	द्वयत का
युक्तिः —	युक्ति	अद्दष्ट —	अदर्शन

॥ भावार्थ ॥

आत्माको श्रुति उपनिषद से साक्षात्कार निश्चय करके तिस आत्मा में युक्ति कथन होती है। कैसा है वह आत्मा अव्यय व्यक्ति से रहित नित्य। फिर ज्योतिप्रकाश स्वरूप है। फिर आनंद रूप है। फिर द्वयत का अदर्शन है जिसमें॥ देहादि से भिन्न आत्मा को सिद्ध करने के निमित (अव्यय) पद है। और आत्मामें प्रमाण और अप्रमाण होते हुये भी अनात्मता असत्यता की शंका वारणके निमित (ज्योतिः) पद है। और आत्माही पुरुषार्थरूप है। यह प्रतिपादन के निमित (आनंदं) पद का विशेषण है। और स्वजातीय विजातीय स्वगत भेद का निरास और प्रपंच का मिथ्यात्व प्रतिपांदन करने के निमित (अद्दष्टद्वयं) पद है। और (श्रुतेःविनिश्चत्य) इतने करके आत्माश्रुति प्रमाण से सिद्धभी है। परन्तु श्रुति अपरोक्ष ज्ञान का साधन है। इस ज़नाने के निमित (साक्षात्) पद है॥

शं— यह ग्रंथ व्याख्यान करने के योग्य नहीं है। क्यों कि अश्रेष्ट पुरुष कृत् है। जोकि ग्रंथ में नमः रूप मंगल का अननुष्ठान और चतुष्टय अनुबंध निरूपण जोकि विद्वानों के संप्रदाय की स्थितितिसका अभाव रूप दोष होने से इस ग्रंथ का रचना परिश्रम मांत्रही है॥

हे वादी यह आपका शंका स्थूल द्दष्टि से है। सुक्ष्म द्दष्टि से देखीये तो तत्व का स्मरण रूप मंगल होने से मंगल के अननुष्ठान का दोष नहीं है। फिर तत्व ब्रह्म तिसका क्षण २ स्मरण अनुस्मरण अनेक स्मरण रूप ब्रह्म के उपस्थापक पदों का प्रयोग ग्रंथ में है। इस हेतु से ब्रह्म वाच्यक पद के अभाव का भी दोष नहीं है। और जो अनुबंध के अभाव का दोष कहा सो भी नहीं है। क्योंकि (आनन्द) पद ही ग्रंथ का प्रयोजन है। और (अद्दष्टद्वयमात्मानं) इस समानाधिकरण से ब्रह्मात्मा की एकताही ग्रंथ की विषय है। और आनंद की प्राप्ति द्वयत की निवृति के कामना वाले पुरुष इस ग्रंथ के अधिकारी हैं। और ग्रंथ प्रतिपादक ब्रह्मात्मा की एकता प्रतिपाद्य है। यह संबंध ग्रंथ का संबंध है॥

शं— यह दोष न हो। परन्तु आत्मज्ञान श्रुतियें से साक्षात् दृढ़ निश्चय हुये फिर युक्ति आत्मा में कथन व्यर्थ है। इस दोष से ग्रंथ का रचना परिश्रम मात्र है ॥

हे वादी आत्मज्ञान पूर्व सिद्ध भी है। परन्तु तिस ज्ञान के प्रतिष्ठार्थ (श्रुति अनुकूलतर्क) रूपी युक्ति शिष्य के प्रति कथन होती है। सो भाष्यकार शंकराचार्य ने कहा है। (ब्रह्मात्मै कत्व विद्या प्रतिपत्तये सर्वे वेदाँता आरभ्यन्त) अर्थात ब्रह्मात्मा की एकता रूप विद्या के प्रतिष्ठा अर्थ सर्व वेदांतों का आरंभ है ॥ १ ॥

शं— रहे परंतु तिस आत्मा के साक्षात्कार के निमित्त श्रुति की अपेक्षा नहीं है। देहादिक आत्मा लौकिक प्रत्यक्षादि प्रमाणों से साक्षात्कार सिद्ध होने से ॥

हे देहात्म वादी इस आपके देह इन्द्रियादियों के आत्मता पक्ष में आप से मैं पूछता हूं कि आपके देहादि आत्मता पक्ष में—

प्रश्न—आत्मानित्यो थवानित्योभेदस्त्वाद्येस्फूटोमतः।
अंत्येकृतस्यहानिःस्यादकृताभ्यागमस्तथा ॥२॥

॥ पदच्छेद ॥

आत्मा—नित्यः—अथवा—अनित्यः—भेदः—तु—आद्ये—स्फुटः—मतः। अंत्ये—कृतस्य—हानिः—स्यात्—अकृतः—अभ्यागमः—तथा ॥

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

आत्मा — आत्मा		तु — आदि पक्ष से विलक्षण	
नित्यः — नित्य है		अंत्ये — अंत पक्ष में	
अथवा — वा		कृतस्य — कर्म फल की	
अनित्यः — अनित्य है		हानिः — नष्टता	
आद्ये — आदि पक्ष में		स्यात् — होगी	
मतः — मेरे मत से		तथा — तैसेही	
स्फुटः — स्पष्ट		अकृतः — न किये कर्म का	
भेदः — भेद देहादि से है		अभ्यागमः — अभ्यागम दोष होगा	

॥ भावार्थ ॥

हे वादी आपका देहादि आत्मा नित्य है वा अनित्य है। आदि पक्ष में तो मेरे मत से देहादियों से आत्मा का स्पष्ट भेद सिद्ध होता है। क्योंकि जगत् को विचित्र होने से। सो विचित्रता कार्य रूप होने से कारण वाला है। सो

कारण भी विचित्र ही है। सो कारण अदृष्ट है। सो अदृष्ट का आश्रय आत्मा नित्य सिद्ध है। और देहादि और देहादि की क्रया विनाशी होने से अदृष्ट का आश्रय नहीं हैं। इस हेतु से देहादिकों में आत्मत्व को असिद्धि हैं। और अंत अनित्य पक्ष में कर्ता भोक्ता की एकता न होगी। क्योंकि कर्मकर्ता आत्मा अनित्य है। फिर उस कर्म के फल का भोक्ता कोई अन्य हुवा चाहिये। वा भोग से विना कर्म फल नाश हुया चाहिये। और तैसे ही वर्तमान में न किये कर्म का फल भोग होगा। इस हेतु से अनात्म शरीरादि से भिन्न आत्मा नित्य सिद्ध है॥

शं...शरीरादि आत्मा क्यों नहीं हैं। इस शंकाके वारण अर्थ कहता हूं। देहादि विकारी जड ज्ञान विरोधी परिच्छिन्नादि धर्म वाली होने से आत्मा नहीं हो सक्ती हैं। यहां तक द्वितीय चरण का व्याख्यान है॥

शं—नित्य आत्मा है भी परन्तु नैयायीक मत में मानस प्रत्यक्ष सिद्ध होने से तिस आत्मा के प्रत्यक्ष में श्रुति की अपेक्षा कदाचित नहीं है॥

उ—न "अविनाशी वा अरेऽयमात्मानुच्छित्ति धर्मा" यह आत्मानाश रहित अनुच्छिति धर्मवान है। इस श्रुति से सिद्ध आत्मा के अपरोक्ष करने में श्रुति से अन्य प्रमाण का अभाव है। इस हेतु से श्रुति की अपेक्षा है। इस अभिप्राय से अव्यय निर्धर्मक कूटस्थ नित्य परिपूर्ण कहा है॥

शं—आत्मा में प्रमाण है वा नहीं है। यदि नहीं है तो वंध्यापुत्र के सम आपका आत्मा असत्य है। यदि प्रमाण हैं तो लौकिक है वा वैदिक है। यदि लौकिक है तो प्रत्यक्ष है वा अनुमान है वा शब्द है वा अन्य कोई प्रमाण है। सो निरूप निर्धर्मक आत्मा प्रत्यक्ष का विषय न होने से आदि पक्ष असिद्ध हैं। और लिंग के अभाव होने से आत्मा में अनुमान भी असिद्ध है। और प्रत्यक्षादि का अविषय होने से शब्द का भी विषय असिद्ध है। चतुर्थ अर्थापति प्रमाण का भी विषय नहीं हो सक्ता है। यदि वैदिक प्रमाण है तो वेद जन्य ज्ञान से भाशित है वा किसी अन्य से भाषित वैदिक ज्ञान से निवर्तक अज्ञान का विषय है। आदि पक्ष वेद जन्य ज्ञान से भाषित घठादिवत जड़ होगा। और द्वितीय पक्ष भी संभव नहीं है। क्योंकि स्वयं प्रकाशमान अज्ञान का विषय नहीं हो सक्ता है। इस वादी के शंका को दूर करने अर्थ सिद्धान्ती की शंका होतो है॥

शंका—भाश्यमान आदित्य उलूक के समान अभाश्य मानता हो सक्ती है।

वादी-न—दिवा अन्धत्व दोष से आदित्य को उलूक नहीं देखता है॥ तिसी करके सूर्य आच्छादित है॥

एक देशी—वेद विषयत्व अविद्या विषयत्व का अभाव होने से जो आपने वेद विषयत्व अविद्या विषयत्व कहा सो असंभव है। इस अनंगीकार में पूछता हूं कि जीव में असंभव है वा ब्रह्म में असंभव है। आदि पक्ष मुझे इष्ट है। क्योंकि वेदकर्ता भाक्ताकोनिः प्रयोजन होने से प्रतिपादन नहीं करा है॥ द्वितीय पक्ष भी ब्रह्म को अविद्या का विषय होने से नित्य ब्रह्म का रूप अविद्या का विषय क्यों न हो। ऐसा एक देशी के मत को दूर करने के निमित्त विकल्प कि तो अन्यवादी से होता है। और मंडन मिश्र के मत का प्रमाण देता है॥

शं—"अयमात्मा ब्रह्म" इस महावाक्य से जीव ही ब्रह्म है। सो जीव अज्ञान का विषय क्यों न हो॥

वा—सो कहता हूं जीव ब्रह्म का और जाव जीव का भेद है। यह सृष्टि दृष्टि वादी अपने पक्ष के सिद्धि अर्थ अद्वैत का संकोच। नाना जीव वाद से करता है। इस संकोच में यह आशय है कि एक जीव वाद में एक के ज्ञान हुये अज्ञान के नाश से बंध मोक्ष व्यवस्था की अनुत्पत्ति होगी॥

दृष्टि सृष्टि वादी पूछता है कि तब वह अज्ञान निर्विषय ही है। क्योंकि स्वयं प्रकाश होने से ब्रह्म तो विषय है नहीं। तैसे आश्रय भी नहीं है। और अज्ञान विशिष्ट होने से जीव भी आश्रय विषय नहीं है आत्माश्रय दोष होने से॥ और ब्रह्म की आश्रयता अनुत्पत्ति है अज्ञान को आश्रय विषय का भेदक होने से। और ब्रह्म को सर्वज्ञता भी असिद्ध है॥२॥

ऐसे एक देशी के विकल्प को श्रवण करके नाना जीवात्म वादी जोकि वेदान्त का एक देशी सृष्टि दृष्टिवादी है। वह वादी जीवात्मा स्वयं प्रकाश को अज्ञान का विषय न सहन कर प्रमाण का श्लोक देता है—

वा—जीवाश्रयाब्रम्ह पदाह्यविद्यातत्वविन्मता।
तद्विरुद्धमिदंवाक्यमात्मात्वज्ञानगोचरः ॥३॥

॥ पदच्छेद ॥

जीव—आश्रया-ब्रम्ह=पदा-हि-अविद्या-तत्व-वित्-मता। तत्-विरुद्धम्-इदं-वाक्यम्-आत्मा=तु-अज्ञान-गोचरः ॥ ३ ॥

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

तत्व	—	तत्व	तत्	—	तिस मत से
वित्	—	वेत्ता मंडन मिश्रके	इदं	—	यह
मता	—	मत में	वाक्यम्	—	वाक्य । जो
हि	—	निश्चय	तु	—	ब्रह्म से विलक्षण
अविद्या	—	अज्ञान	आत्मा	—	आत्मा
जीव	—	जीव के	अज्ञान	—	अविद्या का
आश्रया	—	आश्रित	गोचरः	—	विषय
ब्रह्म	—	ब्रह्म	विरुद्धम्	—	विरुद्ध है
पदा	—	विषयणी है	...	—	...

॥ भावार्थ ॥

तत्ववेता मंडन मिश्र के मत में निश्चय अविद्या जीव के आश्रित ब्रह्म विषयणी है। तिस मत से यह वाक्य जो कि ब्रह्म से विलक्षण आत्मा को अज्ञान का विषयता कहा सो विरुद्ध है ॥ सों जीव अनेक है अन्यथा व्यवहार का उच्छेद होगा। तिस जीवों में जिसको श्रवणादि अभ्यास के परिपकता से ब्रह्मात्मा के एकत्व का ज्ञान है तिसको मोक्ष औरों को बंध है। इस हेतु से अज्ञान नाना कल्पना किया जाता है। अन्यथा अज्ञान के एकत्व से एक के ज्ञान हुये अज्ञान और अज्ञान का कार्य निवृत हुये से प्रत्यक्षादि सिद्ध जगत् का अननुभव हुआ चाहिये ॥

शं—न-अब तक किसी को ज्ञान ही न हुआ। जो ऐसे कहो तो सम्यक् सांगो पांग साधन अनुष्ठानवान व्यास वशिष्ठादिकों को भी ज्ञान के न हुये इदानी काल में हम लोगों को ज्ञान की उत्पत्ति के असंभव हुये श्रवणादिक में अप्रवृति से अनिर्मोक्ष का प्रसंग होगा ॥ ३ ॥

शं—व्यवस्था के अनुरोध से अज्ञान का भेद कल्पना किया है। तैसेही प्रत्यक्षादि के अनुरोध से द्वैत प्रपंच सत्य क्यों न हो। तिस में पूर्व पक्षी से तृतीय श्लोक का अनुयायी पूछता है—

प्रश्न—प्रत्यक्षादि प्रमाणानां प्रमात्वं परतो यदि।
अनवस्था स्फुटात्तत्रस्वतस्त्वे दोषसंशया ॥४॥

॥ पदच्छेद ॥

प्रत्यक्ष-आदि-प्रमाणानां-प्रमात्वं-परतः-यदि।
अनवस्था-स्फुटः-तत्र-स्वतस्त्वे-दोष-संशया ॥

अन्वय शब्दार्थ

प्रत्यक्ष	—	प्रत्यक्ष	तत्र	—	तहाँ
आदि	—	अनुमानादि	स्फुटः	—	स्पष्ट
प्रमाणानां	—	प्रमाणों का	अनवस्था	—	अनवस्था दोष है
प्रमात्वं	—	प्रमात्व (जाती)	स्वतस्त्वे	—	स्वतः सिद्धि में
यदि	—	यदि	संशया	—	संशय
परतः	—	पर प्रमाणों सेसिद्ध हो	दोष	—	दोष हैं

॥ भावार्थ ॥

हे वादी आपके प्रात्यक्ष आदि प्रमाणों का प्रमात्व रूप जाती पर प्रमाणों से सिद्ध है। वा स्वयं सिद्ध है। यदि पर प्रमाणों से सिद्ध है। तो तिस पक्ष में स्पष्ट अनवस्था दोष है। क्योंकि एक २ को अन्य अन्य की अपेक्षा हुये धारा प्रवाह के सम बिना अन्त हुये अनवस्था ही है। तथा प्रत्यक्षादि प्रमाण व्यवहार के समर्थन के विषय योग्य हैं। वा सर्वथा अबाधित अर्थ के विषयी हैं। यदि आदि पक्ष कहो तो भ्रमित विषय से भी व्यवहार हुआ चाहिये। यदि अन्त पक्ष कहो तो पूछता हूं कि स्वयं अबाधित विषय ग्रहण करते हैं वा पर प्रमाणों से। यदि आदि पक्ष कहो तो स्वयं अबाधित विषय ग्राही प्रमाणों में संशय न हुआ चाहिये। और अबाधित विषयी प्रमाणों में भी जब संशय भ्रम होती है। तब अन्य प्रमाणों से निश्चय किया जाता है। यदि पर प्रमाणों से ग्रहण कहो तो प्रथम प्रमाण का निश्चायक अन्य प्रमाण हुये अनवस्थाहो दोष है। तिस हेतु से जो प्रमाण किसीप्रमाण से ग्राह्य न हो उस प्रमाण के ज्ञान से ग्राह्य विषय अबाधित संभव है। सो आपका कोई प्रमाण निर्दोष और अग्राह्य नहीं हैं। फिर तिस प्रमाणों के असिद्ध हुये प्रमाण की विषय प्रपंच सर्वथा अबाधित नहीं है। किन्तु मिथ्या ही है। तिसमें श्रुति प्रमाण है "नेहनाना इति किंचन" इस ब्रह्म में नाना किंचित्त नहीं है॥ "मायां-तु-प्रकृतिं विद्यात्" माया ही विलक्षण त्रिगुण के साम्य अवस्था को प्राप्त प्रकृति रूप होती है॥ इस उत्पन्न उपाधि को "नेति नेति" वाक्य से निषेध होने से समस्त कार्य मिथ्या है। तिसका विषयी प्रत्यक्षादिकों को अप्रमाणता श्रुति दर्शाया है। इस हेतु से व्यवस्था के अनुरोध से और "इन्द्रो मायाभिः पुरुरूपईयते" आत्मा माया के द्वारा बहुत रूप धारण करता है। इस "मायाभिः" बहु बचन के अनुरोध से जीव आश्रयणी ब्रह्म विषयणी नाना अविद्या कैसे आत्मा को विषय करती है। इस अविद्या के नानात्व और अविद्या विशिष्ट जीव के नानात्व में प्रमाण है॥

श्लो—अज्ञानंपूतिजीवंस्यातभिन्नंब्रम्ह पदंचतत्।
वंधमुक्तव्यवस्थातो ब्रम्हश्रोतंचसिद्धति ॥१॥

अर्थ—अज्ञान के प्रति जीव हैं और तिस जीवों से ब्रह्म पद भिन्न है। इस हेतु से बंध मुक्त व्यवस्था और ब्रह्म श्रवण सिद्ध है ॥४॥

यहां पर सिद्धांती के मत का अवलंबन करके एक देशी के मत के निवारण के निमित पुर्व पक्षी पूछता है कि—

पू—जीवब्रम्ह पूयोगाभ्यामेकंवस्त्वऽथवाद्वयम् ।
आद्ये त्विष्टं ममैवस्यात् द्वितीयेत्वन्मतक्षतिः॥५॥

॥ पदच्छेद ॥

जीव-ब्रम्ह-पूयोगाभ्याम्-एकं-वस्तु-अथवा-द्वयम् । आद्ये-तु-इष्टं-मम-एव-स्यात्-द्वितीये-त्वत्-मत-क्षतिः ॥

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

जीव —	जीव	एव —	ही
ब्रह्म —	ब्रह्म	इष्टं —	इष्ट
प्रयोगाभ्याम् —	प्रयोगों करके	स्यात् —	है
एकं —	एक	तु —	विलक्षण प्रथम से
वस्तु —	वस्तु है	द्वितीये —	द्वितीय पक्ष में
अथवा —	वा	त्वत् —	आपके
द्वयम् —	दो	मत —	मत की
आद्ये —	आदि पक्ष	क्षतिः —	हानि है
मम —	मुझके	— —	—

॥ भावार्थ ॥

हे वादी जीव ब्रह्म शब्द करके एक वस्तु आत्मा कहते हैं वा जीव शब्द से आत्मा और ब्रह्म शब्द तिससे अन्य दो कहते हैं। यदि आदि पक्ष कहें तो मुझे भी इष्ट है। और द्वितीय पक्ष में आपके मत की हानि है ॥ अर्थात् आदि पक्ष में आत्मा कैसे अज्ञान का विषय नहीं है। "अयमात्मा ब्रह्म" इस श्रुति से आत्मा ही ब्रह्म होने से आत्मा अज्ञान का विषय है ॥

शं—आत्मा अज्ञान का विषय होने से आत्मा भासमान कैसे होगा। जैसे अन्धकार से आवृत घट अभासित है ॥

सि—अद्वयानंद रूप से आत्मा अज्ञान का विषय है। और चैतन्य रूप आत्मा भासमान है। सोई चैतन्य अज्ञान का विषय है। अन्यथा अज्ञान की असिद्धि होगी। अद्वयानंद स्वरूप चैतन्य मात्र से अभिन्न होने से ॥

वा—सत्य है वास्तव से तैसा ही है। परन्तु अज्ञान के विषयत्व का व्यवस्था कैसे होगी। यदि ऐसा कहें तो अनादि सिद्ध अज्ञान के संबध से स्वयं प्रकाश परिपूर्णा नंद स्वरूप से भास मान भी आत्मा में मिथ्या भेद कल्पना से अद्वयानंद स्वरूप को अज्ञान विषयत्व कथन है। और चैतन्यमात्रही भासित है। भ्रमित पुरुष के प्रतीति के अनुरोध से अद्वयानंद स्वरूप भासित नहीं है॥

शं—कैसे अद्वयानद के प्रतीति का भ्रम है॥

सि—परम प्रेम का विषय रूप आत्मा को भास मान होने से। और सुख आत्मा को अभेद होने से आत्मा के भान हुये सुखभी भासता है। तिस सुख का अभान प्रतीति का बाध होने से भ्रम ही है॥

शं—ऐसे अनिर्वचनीय भेद भिन्न अज्ञान का विषयअद्वितीय सुख आत्मा को आपने कथन किया है॥ ५॥

तथापि परमार्थ से अज्ञान के विषय आश्रय का भेद नहीं निरूपण हुआ। यदि ऐसे कहें तो सत्य है अर्थात इष्ट है—

सि—अविद्यास्वाश्रयाभिन्नाविषयास्यात्तमोयतः।
यथाबाह्यंतमो दृष्टं तथा चेयंततस्तथा ॥६॥

॥ पदच्छेद ॥

अविद्या–स्व–आश्रयः–अभिन्ना–विषया–स्यात्–तमः यतः। यथा–बाह्यं–तमः–दृष्टं–तथा–च–इयं–ततः–तथा॥

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

अविद्या	—	अज्ञान	बाह्यं	—	बाहर का
स्व	—	अपने	तमः	—	अन्धकार
आश्रयः	—	आश्रय से	दृष्टं	—	दर्शित है
अभिन्ना	—	अभिन्न की	च	—	और
विषया	—	विषयणी	तथा	—	तैसहि गृहांतर का
स्यात्	—	है	ततः	—	तिस द्राष्टान्त में
यतः	—	जैसे	तथा	—	तैसेही
तमः	—	अन्धकार	इयं	—	यह अज्ञान है
यथा	—	जैसे	—	—	—

॥ भावार्थ ॥

अविद्या अपने आश्रय से अभिन्न की विषयणी है। जैसे अंधकार अपने आश्रय गृह को ही विषय करता है। जैसे बाहर का अंधकार अपने आश्रय का ही विषयी दृष्ट है। तैसे गृहान्तरवर्ती अंधकार अपने आश्रय भीत आदि का ही विषयी है। तैसे दृाष्टान्त में यह अविद्या भी अपने आश्रय आत्मा को ही विषय करती है। अर्थात जिस करके अविद्या आश्रय विषय का भेद नहीं करती है। तिस करके जीव ब्रह्म का भेद असिद्ध है ॥ ६ ॥

शं—जीव ब्रह्म के परस्पर अभिन्नता में अविद्या करके आश्रय विषय के भेद का अनपेक्षा होने से यह हेतु प्रतिपादन के निमित भिन्न पक्ष का कल्पना करता हूं—

प्र—ब्रम्हात्मनोबिभिन्नत्वे भेदः स्वभाविकोयदि।
औपाधिकोथवा भेदः सर्वथानुपपत्तिकः॥ ७ ॥

॥ पदच्छेद ॥

ब्रम्ह-आत्मनः-विभिन्नत्वेभेदः-स्वभाविकः-यदि।
औपाधिकः-अथवा-भेदः-सर्वथा-अनुपपत्तिकः ॥

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

ब्रह्म	—	ब्रह्म	औपाधिकः	—	उपाधिक है
आत्मनः	—	आत्मा की	यदि	—	यदि स्वाभाविक
विभिन्नत्वे	—	भिन्नता में	भेदः	—	भेद है तो
भेदः	—	भेद	सर्वथा	—	सर्व प्रकार से
स्वभाविकः	—	स्वभाविक है	अनुपपत्तिकः	—	अनुत्पति है
अथवा	—	वा			

॥ भावार्थ ॥

हे वादी ब्रह्म आत्मा की भिन्नता में भेद स्वभाविक है वा उपाधिक है। यदि आदि पक्ष है तो आत्मा से भिन्न ब्रह्म को जडता होगी ॥

वादी—यह मुझे इष्ट है ॥

सि—"विज्ञान मानदं ब्रह्म" विज्ञान आनंद ब्रह्म है ॥ इस विज्ञान ब्रह्म पद के एकता में अखंड अर्थ की प्रतीति होती है। फिर इस

श्रुति का व्याकोप होगा । और तिस ज्ञान ब्रह्म के भेद से ब्रह्म को जडता ही होगी । इस हेतु से आपका इष्टता असिद्ध है । और ब्रह्म को अज्ञान का विषयत्व भी असिद्ध है । और आत्मा को भी ब्रह्म से भिन्न हुये घटादि वत् अनात्मता की आपत्ति होगी । इस हेतुयों से स्वभाविक भेद असिद्ध है । यदि द्वितीय पक्ष है तो उपाधि से जन्य भेद है वाज्ञेयत्व है । वा तंत्रत्व है । यदि प्रथम पक्ष है कि भेद उपाधि जन्य है तो उपाधि भी अज्ञान ही कहने योग्य है । सो अज्ञान का कार्य कदाचितकत्व होने से जीव ब्रह्म का भेद अज्ञान उपाधि जन्य नहीं हो शक्ता है । क्योंकि भेद के उत्पति से पहलेहि केवल आत्मा में अज्ञान भेद के अपेक्षा से रहित सिद्ध है । और स्वतंत्र अज्ञान अंगीकार नहीं है । यदि द्वितीय पक्ष कहें तो अज्ञान जड होने से अज्ञान में भासक पना असिद्ध है । यदि तृतीय पक्ष कहें तो तंत्रत्व तीन प्रकार का लोक में दृष्ट है । उपाधि जन्यत्व उपाधि आश्रितत्व उपाधि भासत्व तिस तीन के मध्य उपाधि जन्य और उपाधि भासक जीव ब्रह्म का भेद असंभव है क्योंकि इन का निषेध पुर्वपंक्ति के सम है । और अज्ञान उपाधि आश्रित भी भेद संभव नहीं है । क्योंकि भेद जीव ब्रह्म से अन्यत्र कहीं है नहीं किन्तु जीव का भेद ब्रह्म में ब्रह्म का भेद जीव में है । फिर भेद अज्ञान आश्रित कैसे हो सक्ता है । इस हेतु से तंत्रत्व भेद असिद्ध है ॥

शं—भेद अज्ञान आत्मा के संबंधवत अज्ञान के तंत्रत्व क्यों न हो ।

सि—जो एसे कहें तो भी नहीं बनता है क्योंकि संबंध संबंधी के तंत्र रहता है । सो आपका भेद वैसा है नहीं । जब जीव ब्रह्म का भेद किसी प्रकार से अज्ञान उपाधिक नहीं सिद्ध है । तब जीव ब्रह्म के विभाग से शून्य अज्ञान केवल आत्मा के आश्रित और आत्मा के विषयणी सिद्ध है । इस रूप से आत्मा अज्ञान का विषय सिद्ध है ॥७॥ तिस में श्रुति का प्रमाण है—

श्रु आश्रयत्वविषयत्वभागिनीनिर्विभागचितिरेवकेवला ।
पुर्वसिद्धतमसोहिपश्चिमोनाश्रयोभवतिनापिगोचरः ॥

॥ पदच्छेद ।

आश्रयत्व-विषयत्व-भागिनी-निः-विभाग-चितिः-
एव-केवलः । पुर्व-सिद्ध-तमसः-हिः-पश्चिमः-
न-आश्रयः-भवति-न-अपि-गोचरः ॥

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

आश्रयत्व	—	आश्रय	तमसः	—	अज्ञान का
विषयत्व	—	विषय के	हि	—	निश्चयकर
भागिनी	—	विभागवाली अज्ञान	पश्चिम	—	पिछले जीव ईश्वर
निः	—	निर्	न	—	न
विभाग	—	विभाग	आश्रयः	—	आश्रय
केवलः	—	केवल	भवति	—	हैं और
चितिः	—	चैतन्य में	गोचरः	—	विषय
एव	—	ही रहती है	अपि	—	भी
पूर्व	—	पहिले से	न	—	नहीं हैं
सिद्ध	—	सिद्ध	—	—	—

॥ भावार्थ ॥

आश्रय विषय के विभाग वाली अविद्या निर्विभाग केवल चैतन्य में ही रहती है। और अविद्या को पहले ही सिद्ध होने से चैतन्य से अन्य जीव ईश्वर कार्य भाव अविद्या का न आश्रय हैं और विषय भी नहीं हो सक्ते हैं। क्योंकि अज्ञान से पीछे अज्ञान के कार्य रूप कल्पित हैं॥

शं— अज्ञान का आश्रय एक है और अज्ञान की अनेकता दुर निरूप है और जीवों के प्रति जगत् का उपादान भूत अज्ञान की अनेकता एक देशी को भी स्वीकार नहीं है। और अज्ञान की एकता में बंध मुक्त की व्यवस्था भी न होगी। इस दोनों भावों से दोष होने से ऐसा वादी पूछता है कि वह अज्ञान एक है वा अनेक है। यह निर्णय कैसे हो॥

सि— वह अज्ञान एक है। इस अज्ञान के एकता में वादी का यह आशय है कि यदि सिद्धान्ती अज्ञान के एकत्व में प्रमाण दें तो अपसिद्धान्त है। यदि न दें तो अज्ञान के एकत्व की असिद्धि है। फिर सिद्धांती की युक्ति अभास मात्र होने से सर्वथा अज्ञान की एकता असिद्ध होगी। इस अभिप्राय से पूछता है कि वह एक अज्ञान वेद से सिद्ध है वा प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सिद्ध है वा दृश्यमान कार्य जगत प्रपंच से सिद्ध है—

वालौकिकी वैदिकी चापि नाज्ञाने दृश्यते प्रमा।
कार्यं दृष्ट्याथ कल्प्यं चेल्लाघवादेकमेवतत् ॥८॥

॥ पदच्छेद ॥

लौकिकी-वैदिकी-च-अपि-न-अज्ञाने-दृश्यते-प्रमा। कार्य-दृष्ट्या-अथ-कल्प्यं-चेत्-लाघवात्-एकं-एव-तत्।

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

अज्ञाने	— अज्ञान में		चेत्	— यदि
लौकिकी	— लौकिक		काय	— जगत् के
च	— और		—	— —
वैदिकी	— वैदिक		दृष्ट्या	— दृष्टि करके
अपि	— भी		कल्प्यं	— कल्पना करो तो
प्रमा	— प्रमाण		लाघवात्	— लाघव से
न	— नहीं		तत्	— वहअज्ञान
दृश्यते	— दृष्ट हैं		एकं	— एक
अथ	— इसके अनन्तर		एव	— हीसिद्ध होता है

॥ भावार्थ ॥

अज्ञान में लौकिक प्रत्यक्षादि प्रमाण और वैदिक प्रमाण भी नहीं देखा जाता है। इस पूर्वार्द्ध श्लोक से अपने सिद्धान्त का परिहार किया। और यदि कार्य जगत् के दृष्टि करके जगत् का उपादान अज्ञान कल्पना करो तो लाघव से वह अज्ञान एक हो सिद्ध होता है। इस उतरार्द्ध श्लोक से तर्क रूप से एक अज्ञान साधता है। अर्थात् इस अज्ञान में वेद प्रमाण है वा प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सिद्ध है वा दृश्य मान कार्य से सिद्ध है। आदिपक्ष कहो तो वेद के पूर्व काण्ड का विषय कर्म मात्र होने से और वेदान्त का विषय परिपूर्ण सच्चिदानंद ब्रह्ममात्र होने से तिस कर्म और ब्रह्म को वेद के फलता का सम्बन्ध होने से अज्ञानादि में तिस सम्बन्ध का अभाव होने से वेद अज्ञान का प्रति पादक नहीं है। और द्वितीय पक्ष भो नहीं बनता है। क्योंकि प्रत्यक्षादि प्रमाणों से यदिस्पष्ट सिद्ध अज्ञान हो तो विवाद का अभाव होगा। इस प्रकार पूर्वार्द्ध से अज्ञान की सिद्धि न होने से दृश्यमान कार्य के दृष्टि से अज्ञान का कल्पना होता है॥

शं—कुलाल घट केसम अज्ञान विना हीं ईश्वर रचित् जगत् हो क्यों अज्ञान की कल्पना करते हैं॥

वादी—न—स्वयं असंग उदासीन स्वानंद में तृप्त ईश्वर को असत्य अनेक सुख दुःखादिरूप प्रपंच की रचना असंभव है। इस हेतु से अज्ञान का विकल्प युक्त है। सो यह कल्प मान अज्ञान एक है वा अनेक है॥

सि—अज्ञान एक है॥

वादी—कैसे अज्ञान एक है॥

सि—जैसे एक निद्रादोष अनेक कार्य का जनकस्वप्न में अनेक विचित्र कार्य का कर्ता दृश्य है। तैसे विचित्र शक्तिवान अज्ञान को ग्रहण करके हीं विश्रांति है। सो अज्ञान जीव की उपाधि होने से उपाधिक आत्मा हीं जीव होता है। सो जीव एक अज्ञान से उपहित एक ही है। नाना नहीं है। और अज्ञान जीव के एकत्व में श्रुति प्रमाण है। "अजामेकांलोहित् शुक्ल कृष्ण वर्णां"
अजं एक त्रिगुणात्मक अविद्या है ॥ "वह्वि प्रजा सृजमानास्वरूपा" बहुत प्रजावों के सृजमान शक्ति स्वरूप वाली है ॥ इन श्रुतियों से अनेकता और जन्यता का निषेध है। तैसे ही "अजो हिएको जुषमाणोंनुशेते जहात्येनां भुक्त भौगामजोंन्यः" (अज) पद से जीव के उत्पति का निषेध है और (एको) पद से जीव के नानात्व का निषेध है ॥

शं—स्वयं प्रकाश ब्रह्म से अभिन्न होने से जीवकी विलक्षण अवस्था कैसे है ॥

सि—(अनुशेते) अविद्या से निन्द्रा के सम सोया अज्ञान से आवृत हुआ ज्ञाननेत्र मुदा हुआ पीछे कार्य कारण में स्थित (जुषमाणां) सेयमान संसारी होता है स्वप्न के सम। फिर आत्म साक्षात्कार, हुये (एनां भुक्त भोगां) यह भुक्त भोग (जहाति) त्यागता है ॥

शं—अविद्या विशिष्ट जीव अविद्या के अंतर भाव कैसे त्यागता है ॥

सि—न (अजोन्यः) जीव अज अविद्या से अन्य है। अविद्या उपाधि रूप से स्वीकार है। यह दृष्टि सृष्टि वाद से एक जीव वादी सृष्टि दृष्टि वान नाना जीव वादी के प्रति कहा है ॥ ८ ॥

शं—नाना जीव वादी का एक जीव वादी के प्रति है। कि—

वा—बंध मोक्ष व्यवस्थास्याज्जीवाभेदे कथं तव ॥
सि—यथा दृष्टं तथैवास्तु दृष्टत्वात्स्वप्नदृष्टवत् ॥९॥

॥ पदच्छेद ॥

बंध—मोक्ष—व्यवस्था—स्यात्—जीव—अभेदे—कथं—तव । यथा—दृष्टं—तथ—एव—अस्तु—दृष्टत्वात्—स्वप्न—दृष्टवत् ॥

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

तव	—	आपके	यथा	—	जैसा
जीव	—	जीव	दृष्टं	—	देखते हो
अभेदे	—	अभेद पक्षमें	तथ	—	तैसा
बंध	—	बंध	एव	—	ही
मोक्ष	—	मोक्ष का	अस्तु	—	रहे
व्यवस्था	—	व्यवस्था	दृष्टत्वात्	—	दृश्यहोने से
कथं	—	कैसे	स्वप्न	—	स्वप्न के
स्यात्	—	होगा	दृष्टवत्	—	दृश्यसम

॥ भावार्थ ॥

हे सिद्धांती आपके जीव अभेद पक्ष में कोई बद्ध कोई मुक्त कोई सुखी दुःखी इत्यादि व्यवस्था कैसे होगी ॥ दृष्टि सृष्टि बादी का—

पू—इसमें क्या विरोध है ॥

उ—अनुभव सिद्ध द्वैत होने से तिस एक जीव वाद में एक के मुक्त हुये सकल संसार के अनुभव का उछेद होगा ॥ जो ऐसे कहे तो न अन्तःकरण जैसे २ अविद्यक हैं तैसे २ बंध मुक्तादि व्यवहार भी स्वीकार है। और जो द्वैत विषय अनुभव कहा सो विषय किस सदृश्य हैं। व्यवहार योग्य है वा परमार्थ सत्ता के योग्य है। यदि व्यवहार के योग्य है तो कैसे ऐसा हो सक्ती है। क्योंकि वेद के तात्पर्य का विषय एकत्व होने से तिस एकत्व ही में वेद के फल का संबंध है और उपाधि कृत् भेद "नेति नेति' वाक्य से निषिध मान होंने से मिथ्यात्व सिद्ध है। इस हेतु से मिथ्या विषय प्रमाण की अपेक्षा नहीं करती है। इस अभिप्राय से द्वितीय पक्ष को उत्पादन करते हैं। यदि परमार्थ सत्ता के योग्य कहो तो बंध मुक्तादि भेद प्रपंच कैसे सत्य हो सक्ता है। क्योंकि एकत्व के तात्पर्य के गाहक षट विध लिंग से व्याप्त वेद त्रिविध परिच्छेद से शून्य वस्तु परमार्थ से बोधित करता है। तिस करिके परिच्छेद परमार्थ सत्ता वाला नहीं हो सकता है। इस करके श्रुति का फल अद्वैत का प्रतिपादन नहीं है।

शं—अनुभव से सिद्ध बहुत जीव हैं। जो ऐसे कहो तो नना जीव जैसे आप देखते हैं तैसे ही रहे दृश्य होने से स्वप्न के दृश्य नाना जीव के सम। अर्थात जैसे स्वप्न में एक परमार्थ सत्ता वाला जीव नाना कल्पित जीवों का बंध मुक्तादि व्यवहार मिथ्या देखता है। तैसे ही आपका जागृत व्यवहार भी दृश्य है॥

पू—स्वप्नवत् जागृत् में एक परमार्थ सत्ता वाला है और सर्व कल्पित हैं। तिन बहुत जीवों में कौन एक सत्य श्रवणादिक में प्रवृत होता है॥

सि—देह जड़ होने से देह को प्रवृति श्रवणादि में नहीं और देह अवच्छिन्न को प्रवृति भी नहीं देह मे श्रवण की आपत्ति होने से किन्तु आत्मा मात्र को श्रवणादि में प्रवृति है ॥

वा—जब शरीर अवच्छिन्न से भिन्न आत्मा है तब मेरे पाद में सुख है मेरे शिर में वेदना है यह अनुभव आत्मा को कैसे होता है ॥

सि—देहादि में आत्मता भ्रम के आश्रित हुआ सुख दुःख जीवादि को अनुभव होता है ॥

वा—एक आत्मा को यह जीवादि अनुभव किस रीति से होता है ॥

सि—सुनीये सम्बन्धी होकर एक ही आत्मा अज्ञान के आश्रित हुआ जीवभाव को प्राप्त होकर देवादि शरीर कर्त्ती प्रयन्त सर्व व्यवहार को प्राप्त स्वयं प्रकाश आत्मा हीं अपने अज्ञान के वश से जीव संसारी है। अन्य नहीं। फिर वही आत्मा श्रवणादि साधन संपन्न हुआ स्वस्वरूप साक्षात्कार के द्वारा अज्ञान का कार्य सर्व प्रपंच का उपसंहार करके अपने आनंद में तृप्त अपने महिमा में स्थित मुक्त व्यवहार का भागी होता है। तिस अवस्था में तिस से अन्य कोई संसारी उस करके अनुभव नही होते। न किंचित द्वैत है। इस सिद्धात के संग्रह का श्लोक व्याख्यान करते हैं ॥

ब्रह्माज्ञादिश जीवादि भावात् भ्रांतं जाग्रत स्वप्न सुषुप्तिर्विभर्ति। स्वात्म ज्ञानादज्ञता निवृतौ नान्यो जीवो नास्ति चा ज्ञात मन्यत् ॥९॥

ब्रह्म के अज्ञान से ईश्वर जीवादि भाव से भ्रांति जाग्रित स्वप्न सुषुप्ति करके नाना व्यवहार को प्राप्त हुआ। फिर अपने ब्रह्मात्म ज्ञान से अज्ञता की निवृति हुये तिससे अन्य कोई जीव संसारी नही है और कुछ उससे अन्य अज्ञात भी नहीं है ॥ ६ ॥

श—तिस करके अननुभूय द्वैत नहीं है। कैसे ऐसा कहते हो क्योंकि अज्ञात भी सत्य द्वैत स्वीकार है। इस हेतु से तीन प्रकार का सत्ता वृद्धों ने अंगीकार किया है॥ जो ऐसे कहो तो—न—तीन सत्ता निरूपण मिथ्या है। क्योंकि दो प्रकार की सत्ता सर्वथा वाध रहित परमार्थिक और प्रातिभसिक से ही दृक दृश्य पदार्थो का निरूपण हो सक्ता हैं। तिसमें सृष्टि दृष्टि नाना जीव वाद का अवलम्वी पूछता है ॥

प्र—अज्ञातुसत्वंनैष्टंचेत् व्यवहारः कथंभवेत्। नह्यदर्शनमात्रेणविषरणो नाशनिश्चयात् ॥१०॥

॥ पदच्छेद ॥

अज्ञात–सत्वं–न–इष्टं–चेत–व्यवहारः–कथं–भवेत्। न–हि–अदर्शन–मात्रेण–विषरणः–नाश–निश्चयान् ॥

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

चेत्	—	यदि	अदर्शन	—	अदर्शन
अज्ञात	—	अज्ञात	मात्रेण	—	मात्र से
सत्वं	—	सत्ता	नाश	—	नाश का
इष्टं	—	इष्ट	निश्चयान्	—	निश्चय करके
न	—	नहीं है	हि	—	निश्चय
व्यवहारः	—	व्यवहार	विषरणः	—	विषादित्
कथं	—	कैसे	न	—	नहीं होते हैं
भवेत्	—	होगा	—	—	—

॥ भावार्थ ॥

हे सिद्धांती यदि आपको अज्ञात सत्ता इष्ट नहीं है तो जगत् का व्यवहार कैसे होगा। क्योंकि अदर्शन मात्र से कोई पुरुष नाश का निश्चय करके विषादित नहीं होते हैं ॥ इस हेतु से प्रपंच का अज्ञात सत्ता भी प्रमाण युक्ति के द्वारा सिद्ध है। यदि न स्वीकार करें तो गृह से गये हुये पुत्र पशु आदि साधनों को न देख कर तिसके नाश का निश्चय करके शोक अग्नि से दाह मान को रुदन करना चाहिये। ऐसे मरण का प्रसंग होगा ॥

सि–स्वप्न के सम जाग्रत में भी प्रतितीक सत्ता संपन्न द्वैत करके व्यवहार क्यों न हो ॥

वादी–न–जागृत् से स्वप्न विषम है क्योंकि जागृत बोध से स्वप्न का बाध है। और इस जाग्रत के साक्षात् कार के पूर्व ही तिस स्वप्न का अभाव है। यह सिद्धांती के अभिप्राय से और एक देशी के मत के अभिप्राय करके जागृत द्वैत प्रपंच अबाधित होने से अज्ञान भी सत्ता युक्त है ॥ १० ॥

इस एक देशी के मत के निरास करके नैयायिकादिकों का भी मत निरास होगा। इस अभिप्राय से एक देशी के मत को निरास करने के निमित सिद्धांती पूछते हैं—

पू—सत्व त्रयं वदन् वादी पृष्टव्योऽत्राधुना मया।

सत्यं द्वैतमसत्यं वा नासत्ये त्रिविधं कुतः ॥ ११ ॥

॥ पदच्छेद ॥

सत्व-त्रयं-वदन्-वादी-पृष्ठव्यः-अत्र-अधुना-मया । सत्यं-द्वैतम्-असत्यं-वा-न-असत्ये-त्रिविधं-कुतः ॥

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

अत्र	—	यहां पर	द्वैतम्	—	द्वयत प्रपंच
त्रयं	—	तीन	सत्यं	—	सत्व है
सत्व	—	सत्ता	वा	—	अथवा
वदन्	—	कथन करनेवाले	असत्यं	—	असत्य है
वादी	—	वादी से	न	—	नहीं
अधुना	—	अब	असत्ये	—	असत्य में
मया	—	मुझ करके	त्रिविधं	—	तीन सत्ता
पृष्ठव्यः	—	पूछने योग्य है	कुतः	—	कहां है

॥ भावार्थ ॥

यहां पर तीन सत्ता कथन करने वाले वादी से अब मुझ करके पूछने योग्य है। कि हे वादी आप द्वैत के सत्ता को परमार्थ का आश्रय लेके साधते हैं वा अनिर्वचनीय प्रातितीक की आश्रय लेके साधते हैं॥ यदि आदि पक्ष कहें तो नहीं बनता है। क्योंकि प्रत्यक्षादि प्रमाणों का निषेध जो चतुर्थ कारीका में किया है । तिसके निषेध से द्वैत का भी निषेध हुआ है । इस हेतु से द्वैत सत्ता परमार्थिक नहीं है ॥ और द्वितीय पक्ष में अनिर्वचनीय क्वचित प्रथम से सिद्ध है । वा नहीं॥ यदि नहीं है तो दृष्टांत के अभाव से आकाशादिक अनिर्वचनीय कैसे सिद्ध होंगे॥ यदि रज्जु सर्पादिक अनिर्वचनीय प्रथम से सिद्ध कहे तो जैसी सत्ता रज्जु सर्पादिक की है तैसे हो सत्ता आकाशादिक प्रपंच की है । सो अज्ञात् सत्ता है। वा प्रातितीक है॥ यदि अज्ञात् भी सत्ता आकाशादिक में कल्पते हैं। तब क्यों यह दृष्टान्त दाष्टान्त में संशय करके उपसंहार करते हैं यह विरोध है॥

वादी-न—गृह से गये हुये का असत्य निश्चय कर रोदन होने का प्रसंग होगा। इस दोषके निवृति अथ अज्ञात् सत्ता स्वीकार किया है॥ और जागृत के वाध के प्रमाण की अप्रवृति होने से अभाव का निश्चय अंगीकार नहीं है॥

सि—स्वप्न के सम सर्व व्यवहार होने से अज्ञात सत्ता असिद्ध है ॥

वादी-न—स्वप्न का बाध होने से जाग्रत् से विषम्य है ॥

सि—भ्रम काल में बाध अनंगीकार होने से प्रमाण के प्रवृति में बाध हुये भी कोई दोष नहीं है। परन्तु भ्रम काल में व्यवहार स्वीकार है। यह जाग्रत स्वप्न दोनों प्रातितीक हैं ॥ फिर असत्य अंगीकार करके अज्ञात् तीसरा सत्ता कैसे मानते हैं ॥ सो कहा है श्लोक में—

स्वप्न दृष्टि सृष्टिः सन्सर्व व्यवहृति क्षमः ।
प्रपंचो नात्र दोषोस्ति तस्य परिहृत्तत्वतः ॥११॥

अर्थात् सर्व व्यवहार में कुसल यह प्रपंच स्वप्न के सम दृष्टि सृष्टि है। इस में कोई दोष नहीं है। तिस का परिहार एक तत्व साक्षात्कार से है ॥ आत्मा का अज्ञान हो देवादि देहाकार और तिस २ वृति आकार उत्पन्न होता है। तिस२ वृति काल ही में वह २ पदार्थ भान हैं ॥ वृति के पहले और पीछे वह पदार्थ विद्यमान नहीं है ॥ वृति सम काल ही आपके अज्ञात घटादिक पदार्थ हैं ॥ फिर अज्ञात सत्ता के भेद से त्रिविध सत्ता कहां सिद्ध हो सक्ता है नहीं हो सक्ता ॥ ११ ॥

इस सिद्धन्ती से अब वादी पूछता है—

प्र—द्वैतभेदप्रतिज्ञानं प्रत्यभिज्ञाकथंवद ।
दशानां युगपत्सर्प भ्रमेयद्वत्तथैव सा ॥१२॥

॥ पदच्छेद ॥

द्वैत—भेद-प्रति—ज्ञानं-प्रत्यभिज्ञा—कथं-वद ।
दशानां-युगपत्-सर्प-भ्रमे-यत्वत्—तथ-एव-सा ॥

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

द्वैत — द्वयतप्रपंच का		यत्वत्	—	जैसे
भेद — भेद		दशानां	—	दश पुरुषों को
ज्ञानं — ज्ञान के		युगपत्	—	एक साथ
प्रति — प्रति है		सर्प	—	रज्जु सर्प
प्रत्यभिज्ञा — प्रत्यभिज्ञा ज्ञान		भ्रमे	—	भ्रममें प्रत्यभिज्ञा है
कथं — कैसै		तथ	—	तैसे
वद — कहते हो		एव	—	हि
— — —		सा	—	वह प्रत्यभिज्ञा है

॥ भावार्थ ॥

हे सिद्धांति जब द्वयत प्रपंच का भेद नानात्व ज्ञान ही के प्रति है। तब (सो अयं घट) यह प्रत्यभिज्ञा ज्ञान कैसे कहते हो ॥

सि—जैसे दश पुरुषों को एक साथ रज्जु में सर्प भ्रम हुये दशों के प्रति दश सर्प का ज्ञान होने से दशसर्प हैं। तथापि एक सर्प भी तीनों काल में नहीं है। परन्तु भय से भागते हुये परस्पर कहते हैं कि हम सबों ने एक ही सर्प का अनुभव किया है। मास पीछे फिर उस स्थान पर गये और फिर भ्रम हुये कहते हैं कि (सो अयं सर्पः) यद्यपि वह काल और यह काल में सर्प का अत्यत अभाव है। परन्तु सर्प भ्रम के वृति के संस्कार से प्रत्यभिज्ञा ज्ञान होता है॥ पृथक पृथक भ्रम हुये कालांतर में प्रत्यभिज्ञा का अभाव हो जाता है इस हेतु से एक साथ कहा है॥ जैसे यह प्रत्यभिज्ञा होती है। तैसे हो प्रपंच घटादिक एक विषय के बिना भी प्रत्यभिज्ञा ज्ञान होता है।

शं—विषय अभाव में प्रमाण नहीं है॥

सि—वह सर्प की प्रत्यभिज्ञा विषय सर्प के अभाव ही में है। और सर्प का ज्ञान भी अभाव है। यह श्लोक के पूर्वार्द्ध का व्याख्यान है॥

अब उतरार्द्ध का सिद्धान्त से व्याख्यान करता हूं॥ इस प्रकार जागृत अवस्था में प्रपंच का अनुभव करके सुषुप्ति में जाकर फिर उठकर पूर्व के जागृत प्रपंच से अन्य का अनुभव करता है और अविवेक से (सो अयं प्रपंचः) ऐसी प्रत्यभिज्ञा होती है॥ इस में विशेष अर्थ यह है कि वृतिरूपी भूमि में जाग्रत प्रपंच रूपी मिथ्या वृक्ष को अविवेक से अनुभव करके फिर वृति में संस्कार रूपी बीज पतन होकर सुषुप्ति में वृक्ष प्रपंच का विलय हुये फिर उठ कर अविवेक से वृतिरूपी भूमि में वह संस्कार रूपी बीजकृत अन्य जाग्रत् प्रपंच का अनुभव कर अविवेक से (सो अयं प्रपंचः) ऐसी प्रत्यभिज्ञा होती है। परन्तु वृति से अन्य जाग्रत और संस्कार नहीं हैं। किन्तु वृति मात्र ही है॥

शं—सुषुप्ति में प्रपंच के अभाय में प्रमाण का अभाव है॥

सि—न "नहि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरि लोपोविद्यते" "अविनाशी त्वात्" द्रष्टाके दृष्टि का लोप विद्यमान नहीं है। अविनाशी होने से॥ "नतु तत द्वितीयमस्ति ततोन्यद्विभक्तं यत्पश्येत्" सुषुप्ति में द्वितीयका अभाव है और जो जाग्रत का द्रष्टा प्रमातृ और इन्द्रियादिक सुषुप्ति में नहीं हैं॥ इन श्रुतियों से द्वयत का अभाव सुषुप्ति में सिद्ध है॥ यहां पर सर्व प्रपंच का अभाव दर्शाया है॥ १२॥

शं—तथा पिरज्जु सर्पज्ञान से द्वयत प्रपंच आकाशादिक के ज्ञान में कुछ विशेषता है। प्रत्यक्षादिक प्रमाणों करके जाग्रत आकाशादिक ग्राह्य हैं। और अविद्या रज्जु सर्पादिक हैं—

वा—सर्प भ्रमाद्विशेषोस्ति जाग्रद्वोधेऽन्यथा कथं ।
इन्द्रियादेरुपादानं तदभावेयतोनधीः ॥१३॥

॥ पदच्छेद ॥

सर्प-भ्रमात्-विशेषः-अस्ति-जाग्रत्-वोधे-अन्यथा-कथं । इन्द्रिय-आदेः-उपादानं-तत्-अभावे-यतः-न-धीः ॥

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

सर्प	—	रज्जु सर्प	उपादानं	—	कारणत्व
भ्रमात्	—	भ्रम से	कथं	—	कैसे सिद्ध होगा
विशेषः	—	विशेष	तत्	—	तिस इन्द्रियों के
अस्ति	—	हैं	अभावे	—	अभाव में
अन्यथा		न स्वीकार करेंगे तो	यत्	—	जो जाग्रत् का
जाग्रत्	—	जाग्रत प्रपंच के	धीः	—	ज्ञान सो
वोधे	—	ज्ञान में	न	—	नहीं होता है
इन्द्रिय	—	इन्द्रिय		—	—
आदेः	—	आदकों को		—	—

॥ भावार्थ ॥

हे सिद्धांती रज्जु सर्पादि भ्रम से जाग्रत् आकाशादिक प्रपंच विशेष हैं। यदि विशेष न मानोगे तो भ्रम सिद्ध प्रपंच ज्ञान के प्रति इन्द्रिय आदिकों को कारणत्व कैसे सिद्ध होगा। क्योंकि तिस इन्द्रियों के अभाव हुए जो प्रपंच ज्ञान सो नहीं विद्यमान रहता है ॥

सि—प्रपंच ज्ञान अविद्या जन्य अर्थ का विषयी होने से रज्जु सर्पादिक ज्ञान के तुल्य है। फिर कैसे प्रपंच ज्ञान में रज्जु सर्प ज्ञान से विशेषता है ॥

वादी न—प्रपंच ज्ञान में प्रत्याक्षादि प्रमाण जन्य बिषयक होने से सर्पादिक ज्ञान से विशेषता है। तथा प्रपंच ज्ञान में प्रत्यक्षादि कृत् भाव और अविद्या कृत्पने का अभाव है। और भ्रमित सर्पज्ञान में अविद्या कारणकृत् भाव और प्रत्यक्षादि प्रमाणकृत्पने का अभाव है। दोनों ज्ञान में यही कारण कृत्पने का विशेषता है। तथा या दृश्य अर्थ इन्द्रिय जन्य ज्ञान विषय करता है। ता दृश्य अविद्या जन्यज्ञान भ्रम विषय नहीं करता है और भ्रम से पूर्व भ्रम की त्रिषय असत्य है। और इन्द्रिय

जन्यज्ञान की विषय इन्द्रियों के संबंध से जन्य है। इस हेतु से ज्ञान से पूर्व विषय अवश्य सत्य है। इस अन्वय व्यतिरेक के द्वारा इन्द्रियों को कारणत्व अवश्य सिद्ध है। तिस हेतु से प्रपंच का अज्ञात सत्ता अवश्य स्वीकार करने योग्य है। अन्यथा प्रपंचज्ञान के उत्पत्ति से पूर्व प्रपंच सत्य न मानोगे तो प्रपंच ज्ञान को प्रपंच लक्षण इन्द्रिय संबंध से अजन्यत्व होगा। और आकाशादिक प्रपंच को इन्द्रिय कारणवान होने से भ्रम से विलक्षण हैं। तिसके उपपादन के हेतु प्रपंच का अज्ञात सत्ता अंगीकार करने योग्य है। अन्यथा अविद्या मात्र से प्रपंच को जन्य हुये प्रपंच भ्रमरूप ही होगा ॥ १३ ॥

इस इन्द्रिय कारणत्व पक्ष को निरास करने के अर्थ सिद्धान्ती श्लोक से व्याख्यान करते हैं—

सि—इन्द्रियाणांकारणत्वे भवेच्चोद्यंतदातव ।
स्वप्नभ्रमेयथातेषामन्वयव्यतिरेकधीः ॥१४॥

॥ पदच्छेद ॥

इन्द्रियाणां-कारणत्वे-भवेत्-चोद्यं-तदा-तव ।
स्वप्न-भ्रमे-यथा-तेषाम्-अन्वय-व्यतिरेक-धीः ॥

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

इन्द्रियाणां	—	इन्द्रियों को	स्वप्न	—	स्वप्न
कारणत्वे	—	कारणत्व की प्राप्ति	भ्रमे	—	भ्रम में
भवेत्	—	हो	तेषाम्	—	तिन इन्द्रियों का
तदा	—	तब	अन्वय	—	अन्वय (भाव)
तव	—	आपका	व्यतिरेक	—	व्यतिरेक (अभाव) से
चोद्यं	—	कल्पना सत्य है	धीः	—	ज्ञान का कारणता हैं
यथा	—	जैसे		—	—

॥ भावार्थ ॥

हे वादी यदि इन्द्रियों को प्रपंच ज्ञान के प्रति कारणता होता तब आप का यह विकल्प सिद्ध होता। सो इन्द्रियों को प्रपंच ज्ञान के प्रति अकारणता सिद्ध होने से आपका विकल्प मिथ्या है। क्योंकि इन्द्रियों का कारणता कार्य बिना दुर्निरूप होने से तिस दुर्निरूप कार्य के प्रति इन्द्रियों का कारणता असत्य है ॥

शं—कार्य दुर्निरूप कैसे है ॥

सि—कहता हूं—इन्द्रियां प्रमा मात्र के कारण हैं वा भ्रम प्रमा साधारण ज्ञान के है वा भ्रम में कारणता है ॥ तिसमें आद्य पक्ष असिद्ध है क्योंकि इन्द्रिय जन्य ज्ञान भ्रम व्यावर्तक प्रमा ज्ञान के अधीन ज्ञान है। और प्रमा ज्ञान भ्रम व्यावर्तक ज्ञान के अधीन होने से अन्योन्याश्रय दोष है। और प्रमिती के विषय अर्थ के सत्यता में हेतु नही हैं। क्योंकि मिथ्या यह रजत है। इस मिथ्या को भी प्रमिती विषय करती है। इस हेतु से प्रमिती के विषय का अवाधितपना असिद्ध है। तथा इन्द्रियां प्रमाण होने से अज्ञात अर्थ को विषय करती हैं ॥

वादी—ऐसाही रहे तो क्या दोष है ॥

सि—दोष है प्रपंच जड़ होने से अज्ञातपना असिद्ध है। और अज्ञात अधिष्ठांन मात्र विषय है। सो अधिष्ठांनता की विश्रांति आत्मा मात्र में है। सो आत्मा में इन्द्रियों का विषयत्व असिद्ध है ॥

शं—श्रुति प्रपंच को इन्द्रियों का विषयत्व दर्शाया है ॥

सि—न-स्वप्न के इन्द्रियों के सम अन्वय व्यतिरेक भ्रम सिद्ध प्रपंच ज्ञान की करणता अनुवाद से आत्मा को इन्द्रियों के अविषयता में श्रुति का तात्पर्य है। इतने विकल्प से द्वितीय पक्ष भ्रम प्रमा साधारण ज्ञान के जनकता का भी निषेध हुआ है। इस हेतु से इन्द्रियों को प्रमा का करणत्व असिद्ध है। और तृतीय पक्ष भी इन्द्रिय से रहित अविद्या मात्र से जन्य भ्रम को आपी स्वीकार किया है। इस हेतु से ज्ञान के प्रति इन्द्रियों का अन्वय व्यतिरेक स्वप्न के अन्वय व्यतिरेक के तुल्य है॥ जैसे स्वप्न का प्रपंच ज्ञान स्वप्न के इन्द्रियों से जन्य है। स्वप्न के इन्द्रियों के अभाव से स्वप्न ज्ञान का अभाव है। तैसे जाग्रत प्रपंच का ज्ञान है ॥ परन्तु जाग्रत स्वप्न का प्रपंच और ज्ञान और इन्द्रियादिक घटपटादि कार्य मात्र में कारणत्व अविद्या को ही सिद्ध है ॥ ब्रह्म से अतिरिक्त ज्ञान ज्ञेय रूप सर्व कार्य अविद्यक प्रातितीक सत्तावान सर्व सिद्ध हैं॥ सो वशिष्ट जी ने कहा है ॥ कि—

अविद्यायोनयोभावाः सर्वेंमीबुद्बुदाइव ।
क्षणमुद्भुय गछंति ज्ञानैक जलधौ लयं ॥१॥

अर्थात्—यह सर्व भाव अविद्या योनिज नाम अविद्या जन्य जल बुद्बुदा के सम क्षण में उत्पन्न होकर एक ज्ञान रूपी समुद्र में लय को प्राप्त हो जाते हैं॥ १४ ॥

वादी—एक अविद्या को सर्व प्रपंच के प्रति कारणता श्रवण करके अब सिद्धांती से पूछता है :—

वा-मृदादीनां कारणत्वं न चेदिष्टंघटं प्रति ।
अविद्यायाः कारणत्वंकथंसिद्ध्येत्प्रमाविना ॥१५॥

॥ पदच्छेद ॥

मृत-आदीनां-कारणत्वं-न-चेत्-इष्टं-घटं-प्रति ।
अविद्यायाः-कारणत्वं-कथं-सिद्ध्येत्-प्रमा-विना ॥

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

चेत्	— यदि	न	— नहीं है
घटं	— घट के	प्रमा	— प्रमाण दृष्टान्त के
प्रति	— प्रति	विना	— विना
मृत्	— मृतिका	अविद्यायाः	— अविद्या का
आदीनां	— आदिकों को	कारणत्वं	— कारणत्व
कारणत्वं	— कारणत्व	कथं	— कैसे
इष्टं	— इष्ट	सिद्ध्येत्	— सिद्ध होगा

॥ भावार्थ ॥

हे सिद्धांती यदि आपको घटादिकों के प्रति मृतिका आदिकों का कारणत्व इष्ट नहीं है । फिर प्रमाण दृष्टान्त के विना आपके अविद्या को कारणत्व कैसे सिद्ध है ॥ अर्थात् अविद्या योनित्व भावों में कारण कार्य भाव है वा नहीं है । यदि नहीं है तो अविद्या यैानित्व भी कैसे सिद्ध है ॥

सि— कारण कार्य भाव में यथा योग्य अन्वय व्यतिरेक प्रमाण है । इससे अन्य असम्भव है ॥

वादी— तथा अन्वय व्यतिरेकादिक सिद्ध मृतकादिकों का कारणत्व त्याग कर अविद्या का कारणत्व कथन अनुचित् है । किंच अविद्या योनित्य भावों को मानने वाले के प्रति पूछता हूं । कि अन्य के अपेक्षा से रहित अविद्या ही कारण है वा अदृष्ट ईश्वर आदि की अपेक्षा सहित कारण है । यदि अन्य के अपेक्षा से रहित कारण है तो नहीं बनता है । क्योंकि कारण के बिचित्रता के अभाव से कार्य की विचित्रता का असंभव है । और चैतन्य अधिष्ठांन के विना जड़ शक्ति कार्य नहीं कर सक्ती है । और द्वितीय पक्ष भी समिचिन नहीं है । क्योंकि अविद्या कारण वादी के प्रति भी अदृष्ट ईश्वरादिकों को अवश्य कारण मानना होगा । लाघव हुये तिस ही से विचित्र कार्य की उत्पति है । फिर अज्ञान मात्र करके कारणत्व मानने से क्या अर्थ है । तथा प्रत्यक्षादिक लौकिक प्रमाणों और पूर्व कांड पुत्र पशु सर्गादि के प्रति यज्ञादिक के साधनता का बाधक प्रमाण समार्थिक होता है । अन्यथा

लोक वेद से विरुद्ध है ॥ क्योंकि वैदिक पूर्व कांड के अस्वीकार से अविद्यक जगत् वादी भी आप सिद्ध नहीं होते हैं। और प्रत्यक्षादिक प्रमाण के अस्वीकार से बौद्ध भी आप सिद्ध नहीं होते हैं ॥ फिर दोनों से भ्रष्ट आप किस पक्ष का अवलम्बन लेते हैं। और प्रपंच को अन अविद्यक होने से वेद का शिर भी अप्रमाण न होगा ॥ जपादिक अर्थ करके प्रमाणिक होने से ॥ फिर जिस करके विचित्रता का अभाव और अविद्या शक्ति का जड़ता है। और प्रत्यक्षादिक प्रमाण हैं ॥ तिस करके सर्व भाव अविद्या जन्य हैं ॥ यह कथन आपका साहस मात्र है। क्योंकि अविद्या को कारणत्व किसी प्रकार से सिद्ध नहीं हो सका है ॥ १५ ॥

इस प्रकार के वादी का कथन श्रवण करके सिद्धान्ती कहते हैं—

सि—यथासतो जनिर्नैवमसतोपि जनिर्न च।
जनत्वमेव जन्यस्य मायिकत्व समर्पकं ॥१६॥

॥ पदच्छेद ॥

यथा-सतः-जनिः—न—एवम्-असतः-अपि-जनि न—च । जनत्वं—एव—जनस्य-मायिकत्व—समर्पकं ॥

॥ अन्वय शाब्दार्थ ॥

यथा	—	जैसे	जनिः	—	जन्य
सतः	—	सत्य	न	—	नहीं है
जनिः	—	जन्य	जन्यस्य	—	जन्य का
न	—	नहीं है	जन्यत्वं	—	जन्यत्व भाव
च	—	और	एव	—	ही
एवम्	—	इसी प्रकार	मायिकत्व	—	अविद्यक
असतः	—	असत्य	समर्पकं	—	समर्थित है
अपि	—	भी	—	—	—

॥ भावार्थ ॥

हे वादी जैसे सत्य जन्य नहीं है इसी प्रकार असत्य भी जन्य नहीं है। और जो जन्य देखते हो सो तिस जन्य का जन्यत्व भावहि मायिक समर्थित है ॥ विकल्प—अर्थात् हे वादी आपका कार्य निर्वचन के योग्य है वा अनिर्वचनीय है ॥ यदि वचन का विषय है तो क्या आत्मा के समसत्ता करके वचन का विषय है वा शश विषाण के सम असत्य करके वचन का विषय है। सो हे वादी दोनों पक्ष भी वचन का विषय असिद्ध हैं ॥ क्योंकि "एक मेवाद्वितीयं" एक अद्वितीय ही है ॥ इस आगम से विरोध होने से और व्यक्तिमात्र में कार्यता होने से सत्य को कार्य पना असिद्ध है ॥ और असत्य

कहो तो शशविषाण भी कारण व्यापार से जन्य हुआ चाहिये इस हेतु से द्वितीय पक्ष भी असिद्ध है ॥

वादी—सत्य असत्य से विलक्षण अनिर्वचनीय मेरा कार्य है ॥

सि—जो ऐसे वादी कहें तो कार्य के अनुरूप अनादि अनिर्वचनीय अज्ञान ही को कारणत्व युक्त है ॥ क्योंकि सत्य को असत्य का कारणता लोक में अदृश्य है ॥ और विचित्र शक्तिवान अज्ञान होने से कार्य की विचित्रता का भी अभाव नहीं है ॥ और साध्य साधनभाव के द्वारा और सत्व शुद्धि द्वारा और प्रवृति के द्वारा ब्रह्म ही में तात्पर्य होने से वेद के पर्व कांड का भी विरोध नहीं है। तात्पर्य अर्थ में शब्द का प्रमाण होने से ॥ तिस हेतु से अविद्या योनित्व सर्वभाव कथन समिचिन है। इस हेतु से अविद्या कल्पित जगत का सत्ता प्रातितो समकाल ही उचित है। रज्जु सर्प शुक्ति रजत गंधर्वनग्र मरुस्थल जल स्वप्न प्रपंच स्थाणु पुरुष इत्यादिकों में तैसा ही दृश्य है ॥१६॥

फिर यहां पर वादी से यह पूछने योग्य है मुझ करके कि :—

प्र—प्रतीतिमात्रसत्वं चेत्सत्वं प्रातीतिकं मतं ।
अविरोधात्मयाऽपीष्टं तद्भेदेवदकाप्रमा ॥१७॥

॥ पदच्छेद ॥

प्रतिती-मात्र-सत्वं-चेत्-सत्वं-प्रातीतिकं-मतं ।
अविरोधात्-मया-अपि-इष्टं-तत्-भेदे-वद-का-प्रमा ॥

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

चेत्	— यदि	मया	— मुझ करके
प्रतीति	— प्रतीति	अपि	— भी
मात्र	— मात्र ही	इष्टं	— इष्ट है। फिर
सत्वं	— सत्ता है तो	तत्	— तिस सत्ता के
प्रातीतिकं	— प्रतीतिक	भेदे	— भेद में
सत्वं	— सत्तावान	वद	— कहिये
मतं	— मत आपका है	का	— क्या
अविरोधात्	— अविरोध होने से	प्रमा	— प्रमाण है

॥ भावार्थ ॥

हे वादी यदि प्रातीतिक ही सत्ता जगत् का है तब प्रातीतिक सत्तावान आपका मत सिद्ध हुआ। फिर अविरोध होने से मुझ करके भी इष्ट है ॥ तब ज्ञान के सत्तावान ज्ञेय नहीं है ॥ इस ज्ञान ज्ञेय रूप जगत् के भेद में कहिये क्या प्रमाण है ॥ अर्थात् ज्ञान ज्ञेय रूप जगत् के भेद में कोई प्रमाण नहीं है ॥

शं— ज्ञेय को ज्ञान की अपेक्षा और ज्ञान को ज्ञेय और अन्य ज्ञान की अपेक्षा रूप संवन्ध होने से ज्ञान ज्ञेय का भेद और ज्ञान ज्ञेय के सत्ता का भेद सिद्ध है ॥

सि-- हे वादी ज्ञेय को ज्ञान की अपेक्षा रहे परन्तु ज्ञान को ज्ञेय की अपेक्षा कैसे है ॥ क्योंकि ज्ञेय ज्ञान ही को अपेक्षा करती है। और सामान ज्ञान के अनपेक्षा में विषय व्यावृत् ज्ञान की अपेक्षा में विषय की भी अपेक्षा अवश्य है ॥ यह वचन तुच्छ है ॥ क्योंकि ज्ञान स्वतः व्यावृत् होने से ॥ और अनवस्था दोष होने से ज्ञान ज्ञेय और अन्य ज्ञान की अपेक्षा नहीं करता है ॥ प्रसिद्ध जाति आदिकों के सम। जैसे जाति अन्य जाति की अपेक्षा नहीं करती हैं ॥ तथापि ज्ञान को ज्ञेय में व्याप्त होने से ज्ञान ज्ञेय को वोधित करता है ॥

शं— न—ज्ञान की व्याप्ति असिद्ध हैं ॥ ज्ञान ज्ञेय को भिन्न भिन्न देश में स्थित् होने से। ज्ञान ज्ञेय की एकता का अभाव है ॥ और अतीत अनागत अर्थिक ज्ञान को दृश्य होने से ज्ञान ज्ञेय का समकाल भी, असिद्ध है। तथापि आपका ज्ञान ज्ञेय का अभेद ज्ञानरूप तिष्ठित है वा ज्ञेय रूप तिष्ठित है ॥ यदि ज्ञान रूप कहे तो मेरो ज्ञेय ही रूप तिष्ठित क्यों न हो ॥१७॥

जो वादी ऐसा कहें तो यह विनिगमन असिद्ध है। क्योंकि वादी ज्ञेय का सत्ता प्रतीति मात्र अङ्गीकार किये हैं ॥ सो श्लोक से पूछता हूं :—

प्र-प्रत्येतव्य प्रतीत्योश्च भेदः प्रमाणिकः कुतः ।
प्रातीतिमात्रमेवैतत् भातिविश्व चराचरं ॥१८॥

॥ पदच्छेद ॥

प्रत्येतव्य-प्रतीत्योः-च-भेदः—प्रमाणिकः—कुतः ।
प्रातीति-मात्रम्-एव-एतत्-भाति-विश्व-चर-अचरं ॥

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

चर	— चर (कृयावान)	भाति	— भान है
अचरं	— स्थावर (अकृय)	प्रत्येतव्य	— प्रतीति योग्य
एतत्	— यह	प्रतीत्योः	— ज्ञान रूप ही है
विश्वं	— जगत्	च	— फिर
प्रातीति	— ज्ञान	भेदः	— भेद ज्ञान ज्ञेय का
मात्रम्	— मात्र	प्रमाणिकः	— प्रमाणिक
एव	— ही	कुतः	— कैसे है

हे वादी चर अचर यह सर्व जगत् ज्ञान मात्र ही भान है। फिर प्रतीति योग्य सत्ता ज्ञान रूप होने से ज्ञान ज्ञेय का भेद प्रमाणिक सिद्ध कहां हो

शङ्का है ॥ अर्थात् जो संसार भान होता है सो प्रतीति मात्र है। अथवा जो प्रतीति मात्र नाम (ज्ञान मात्र) सो स्वप्रकाश के महिमा करके जगत् रूप से भान है ॥ तथा जड़ प्रपंच को अपने सिद्धि अर्थ ज्ञान की अपेक्षा अवश्य है ॥ और ज्ञान को विषय की अनपेक्षा प्रतिपादन होने से ज्ञान में ही ज्ञेय (विषय) अंतर भाव होने योग्य है ॥ भाव यह है कि ज्ञान से ज्ञेय अतिरिक्त नहीं किन्तु ज्ञान रूप ही है ॥१८॥

शं— यदि प्रतीति रूप ही जगत् है अतिरिक्त नहीं है ॥ फिर चर अच रूप के भेद करके नाना रूप से जगत् की प्रतीति क्यों होती है—

सि—ज्ञानज्ञेय प्रभेदेन यथा स्वाप्नं प्रतीयते ।
विज्ञान मात्रमेवैतत्तथा जाग्रच्चराचरं ॥१९॥

॥ पदच्छेद ॥

ज्ञान-ज्ञेय-प्रभेदेन-यथा-स्वाप्नं-प्रतीयते ।
विज्ञान-मात्रम्-एव-एतत्-तथा-जागृत्-चर-अचरं ॥

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

यथा	— जैसे	चर	— चर (क्रयावान)
ज्ञान	— ज्ञान	अचर	— स्थावर (अक्रय)
ज्ञेय	— विषय के	एतत्	— यह
प्रभेदेन	— भेद करके	जाग्रत्	— जाग्रत् प्रपंच
स्वाप्नं	— स्वप्न	विज्ञान	— विज्ञान
प्रतीयते	— प्रतीत होता है	मात्रम्	— मात्र
तथा	— तैसे	एव	— ही है

॥ भावार्थ ॥

हे वादी जैसे ज्ञान ज्ञेय के भेद करके स्वप्न प्रतित होता है। तैसे चर अचर नाना रूप से यह जगत् प्रपंच जाग्रत् ज्ञान मात्र ही भान है ॥ अर्थात् वास्तव से विज्ञान स्वरूप ही स्वप्न और स्वप्न अवस्था संबंधी प्रपंच ज्ञान ज्ञेय के भेद करके प्रतीत होता है। तथा विज्ञान ही ज्ञेय विज्ञान ही ज्ञेय रूप करके नानात्व भान है। तैसे विज्ञान मात्र ही यह जगत् प्रपंच जाग्रत् कालीन चराचर नानात्व रूप से भान होता है ॥ ऐसे नानात्व भान की अनुत्पति नहीं है ॥ १९ ॥

शं— विज्ञान ही जगत् रूप करके भान है वा विज्ञान से भेद करके जगत् स्वतंत्रता से भान होता है ऐसे शंका हुये श्लोक करके व्याख्यान करता हूं—

सि—तन्तो भेदे पटो यद्वच्छून्य एव स्वरूपतः ।
आत्मनोऽपितथैवेदं भानमात्रं चराचरं ॥२०॥

॥ पदच्छेद ॥

तंतोः—भेदे—पटः—यद्वत्—शून्य—एव—स्वरूपतः ।
आत्मनः-अपि-तथ—एव-इदं-भान-मात्रं-चर-अचरं॥

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

यद्वत	— जैसे	एव	— ही
तंतोः	— तंतुओं के	इदं	— यह
भेदे	— भेद से	भान	— प्रतीति
पटः	— पट	मात्रं	— मात्र
स्वरूपतः	— स्वरूप से	चर	— चर
एव	— ही	अचरं	— अचर जगत्
शून्य	— शून्य है	अपि	— भी
तथ	— तैसे	आत्मनः	— आत्मा के भेदसे शून्य हैं

॥ भावार्थ ॥

हे वादो जैसे तंतुओं के भेद से पट का स्वरूप ही वास्तव से शून्य है। तसे ही यह भान मात्रं चराचर जगत् भी आत्मा के भेद से स्वरूप से ही शून्य है ॥ अर्थात् कारण का सत्ता ही कार्य का सत्ता है ॥ स्वतंत्र कार्य का सत्ता असिद्ध है ॥

शं—तंतु के अभाव हुये भी पट विद्यमान है ॥

सि—न-पट के प्रति तंतु समवायी कारण होने से पट का आश्रय है। तिसके अभाव से पट तिष्ठित नहीं रह शक्ता है ॥

शं—तंतु की सत्ता को पट की सत्ता कथन अयुक्त है ॥

सि—जो ऐसे वादी कहें ता हिम विन्ध्याचल के सम भेद में कारण काय भाव का अदर्शन होने से पट-को तन्तु का अपेक्षा होने से और तन्तु निर्पेक्ष होने से तन्तु ही अवशेष सिद्ध है। इस हेतु से तन्तु के भेद से पट का स्वरूपशून्य है ॥ तैसे यहां प्रतीति सिद्ध जगत् चराचर आत्मा के स्वरूप से भिन्न हो।तो स्वरूप से ही शून्य है। इसमें हेतु यह है कि भान मात्र पद से चैतन्य का प्रकाश सिद्ध है। सो चैतन्य रूपता वास्तव से आत्मा ही में प्रवेश है। इस हेतु से आत्मा के भेद से जगत् का असत्यता युक्त हैं ॥ २० ॥

शं—चिदात्मा को जगत् रूप भान होने से विकारीपने का प्रसंग होणा ॥

सि—जो वादी ऐसे कहें तो विवर्त वाद के आश्रय से विकारीपने का दोष नहीं है सो दृष्टांत साथ श्लोक से व्याख्यान करता हूं—

सि—रज्जुर्यथा भ्रान्त दृष्ट्या सर्परूपा प्रकाशते।
आत्मातथामूढबुद्ध्याजगद्रूपःप्रकाशते॥२१॥

॥ पदच्छेद ॥

रज्जुः-यथा-भ्रान्त-दृष्ट्या-सर्प-रूपा- प्रकाशते ।
आत्मा—तथा—मूढ—बुद्ध्या—जगत्—रूपः—प्रकाशते॥

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

यथा	—	जैसे	तथा	—	तैसे
भ्रान्त	—	भ्रमित पुरुष के	मूढ	—	मूढ अज्ञानी के
दृष्ट्या	—	दृष्टि करके	बुद्ध्या	—	बुद्धि करके
रज्जुः	—	रज्जु	आत्मा	—	आत्मा
सर्प	—	सर्प	जगत्	—	संसार
रूपा	—	रूप से	रूपः	—	रूप से
प्रकाशते	—	प्रकाशित हैं	प्रकाशते	—	प्रकाशित है

॥ भावार्थ ॥

हे वादी जैसे भ्रमित पुरुष के दृष्टि करके रज्जु सर्पादि रूप से प्रकाशित है। तैसे अज्ञानी जनों के बुद्धि करके आत्मा जगत् रूप से प्रकाशित है ॥

शं—अज्ञात रज्जु को सर्प रूप से भाषित कहना युक्त है। सर्प का अधिष्ठान होने से। परन्तु आत्मा को अज्ञान के वश से जगत् रूप से भानपने का कल्पना युक्तनहीं है। क्योंकि तिस आत्मा को जगत् का निमित् मात्र होने से जगत् के अधिष्टानत्व की अनुत्पति है ॥२१॥

इस वादी के शंका के हुये श्लोक से परिहार करते हैं—

सि—आत्मन्येव जगत् सर्वं दृष्टिमात्रमतत्वकं ।
उद्भूयस्थितिमादायविनश्यंतिमुहुर्मुहुः॥२२

॥ पदच्छेद ॥

आत्मनि-एव-जगत्-सर्वं-दृष्टि-मात्रम्-अतत्वकं ।
उद्भूय-स्थितिम्-आदाय-विनश्यंति-मुहुः-मुहुः ॥

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

अतत्वर्क	—	तत्व से रहित	उद्भूय	—	उत्पति
दृष्टि	—	प्रतीति	स्थितिम्	—	स्थिति को
मात्रम्	—	मात्र	आदाय	—	प्राप्त होकर
सर्वं	—	सर्व	मुहुः	—	पुनः
जगत्	—	संसार	मुहुः	—	पुनः
आत्मनि	—	आत्मा में	विनश्यंति	—	विनाश को पाता है
एव	—	ही	—	—	—

॥ भावार्थ ॥

हे वादी तत्व से रहित प्रतीति मात्र यह सर्व जगत् प्रपंच आत्मा में ही उत्पति स्थिति को प्राप्त होकर पुनः पुनः विनाश को पाता है ॥ अर्थात् उत्पति स्थिति निवृति का हेतु होने से आत्मा निमित मात्र नहीं है । किन्तु उपादानता और जगत् की अधिष्ठानता होने से आत्मा को अज्ञातता युक्त है ॥

शं— आत्मा को जगत् रूपता में अनात्मता परिछिन्नता धर्मिक जगत् रूप के धर्म दुःखनादिक की आपत्ति होगी । दुःख रूप जगत् आत्मक होने से । तथा नानात्व अशुद्धत्व होगी । जगत्मय होने से ॥ तथा धर्मानिकवान भी होगा । क्योंकि धर्मादिकों के विना आत्मा जगत् को उत्पन्न नहीं कर शक्ता है । विषम्य दृष्टि दोष होने से ॥ तथा जीव का अदृष्ट से जीवन भी न होगा । न अपना अदृष्ट सिद्ध होगी । जीव ब्रह्म के अभेद होने से ॥ इन हेतुओं से जैसे दुग्ध दधि आकार होकर फिर दधि ही शेष है ॥ तैसे आत्मा भी जगत् रूपता के प्राप्त होकर जगत् ही शेष है आत्मा नहीं है ॥ २२ ॥

इस वादी के शंकित दोषों को निरास करने के निमित श्लोक से व्याख्यान करता हूं—

सि—पूर्णानन्दाद्वये शुद्धे पाप दोषादि वर्जिते ।
प्रतिबिम्बमवाभातिदृष्टिमात्रंजगत्त्रयं ॥२३॥

॥ पदच्छेद ॥

पूर्ण-आनन्द-अद्वये-शुद्धे-पाप-दोष-आदि-वर्जिते ।
प्रतिबिम्बम्-इव—आभाति-दृष्टि—मात्रं-जगत-त्रयं ॥

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

पाप	—	पाप	दृष्टि	—	प्रतीति
दोष	—	दोष	मात्रं	—	मात्र
आदि	—	आदिकों से	त्रयं	—	तीनों
वर्जिते	—	रहित में	जगत्	—	लोक
पूर्ण	—	पूर्ण	प्रतिबिम्बम्	—	प्रतिबिंब के
आनन्द	—	आनन्द	इव	—	सम
अद्वये	—	अद्वितीय	आभाति	—	भान होता है
शुद्धे	—	शुद्ध में	—	—	—

॥ भावार्थ ॥

हे वादी धर्म अधर्मादि पाप दोषों से रहित पूर्ण आनन्द अद्वितीय शुद्ध में प्रतीति मात्र यह तीनों लोक प्रतिबिम्ब के समभान होता है ॥ अर्थात् पूर्ण आनन्दादि विशेषणों से युक्त आत्मा को अज्ञान के वश ही परिच्छिन्नता दुःखीता आदि रूप जगत् की स्वरूपता है। वास्तविक एक भी दोष नहीं है ॥ जसे दर्पण मुख के समीप होने से प्रतिबिंब रूपता से भासमान भी प्रतिबिंब आकार मिथ्या होने से बिंब मुख अपने स्वरूप को नहीं त्यागता है। इस प्रकार आत्मा का भी जगत् आकारता मिथ्या होने से जगत् रूप से भासमान भी आत्मा अपने स्वरूप को नहीं त्यागता है ॥ इस वास्ते प्रतिबिंब के दृष्टांत में साक्षि रूप से यथार्थ वक्ता के बचन का प्रमाण है ॥

॥ श्लोक वाशिष्ट जी करके उक्त है ॥

तस्मिंश्चिद्दर्पणेस्फारेसमस्तावस्तुदृष्टयः इमास्ताः प्रतिबिंबतिसरसीवतटद्रुमाः । तथा यस्यचित्तमयी लीलाजगदैतच्चराचरंतस्य विश्वात्मकत्वे पिखंडते नैक पिंडता ॥ ९ ॥

अर्थात् चैतन्य रूपी दर्पण स्वक्ष में यह समस्त अनात्मक जगत् प्रतीत है। सरोवर के तट के वृक्ष केसम प्रतिबिंबित है। तैसे जिस चैतन्य का यह चराचर जगत् लीला मय है तिस चैतन्य को विश्वरूपता हुये भी एक रूपता खंडित नहीं होता है॥ इस अभिप्राय से प्रतीति मात्र रूप जगत् आत्म विषयणी अविद्या कृत है। इस हेतु से आत्मा अज्ञान का विषय है। यह पूर्व उक्त कल्पना सत्य है ॥ तथा आत्मा में लौकिक वैदिक प्रमाण के अभाव से शश विषाणै के सम असत्यता की आपति भी नहीं है ॥ २३ ॥

फिर आत्मा के साक्षात्कार के निमित शास्त्र की प्रार्थना और युक्ति कीअपेक्षा क्यों न हो। अवश्य अपेक्षा है। इस विषय में श्लोक का व्यख्यान करते हैं—

सि—यत्तत्वंवेदगुप्तंपरमसुखतमंनित्यमुक्तस्वभावम् ।
सत्यंसुक्ष्मात्सुसूक्ष्मंमहदिदममृतंमुक्तमात्रैकगम्यम्॥
यस्यांशोलेशमात्रंजगदिदमखिलंभ्रांतिमात्रैकदेहम् ।
प्रत्यक्ज्योतिः स्वरूपं शिवमिदमधुना कथ्यते
युक्तितोत्र ॥ २४ ॥

इति श्री मत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ श्री स्वामी ज्ञानानंद
जी पूज्यपादका शिष्य श्रीस्वामी प्रकाशा-
नन्द जी कृत् वेदांत सिद्धांत
मुक्तावली गत कारीका-
वली पुर्वार्द्ध
समाप्तः ॥

॥ पदच्छेद ॥

यत्-तत्वं-वेद-गुप्तं-परम-सुखतमं-नित्य-मुक्त-स्वभावम् । सत्यं-सूक्ष्मात्-सुसूक्ष्मं-महत्-इदं-अमृतं-मुक्त-मात्र-एक-गम्यम्-यस्य-अंशो-लेश-मात्रं-जगत्-इदम्-अखिलं-भ्रांति-मात्र-एक-देहम्-प्रत्यक्-ज्योतिः-स्वरूपं-शिवम्-इदम्-अधुना-कथ्यते-युक्तितः अत्र ॥२४॥

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

अत्र	—	यहां पर	गम्यम्	—	ज्ञात है
इदम्	—	यह तत्व	शिवम्	—	कल्याण रूप है
यत्	—	जो	यस्य	—	जिसके
तत्वं	—	तत्व कि	अंशे	—	अंश के
वेद	—	वेद	लेश	—	लेश
गुप्तं	—	गुप्त	मात्रं	—	मात्र से
परम	—	परम	इदम्	—	यह
नित्य	—	नित्य है	अखिलं	—	समस्त
सुखतमं	—	उत्तम सुख है	जगत्	—	संसार का

सत्यं	—	सत्य	एक	—	एक
मुक्त	—	मुक्त	भ्रांति	—	भ्रांति
स्वभावम्	—	स्वभाव है	मात्र	—	मात्र
सूक्ष्मात्	—	सूक्ष्म से भी	देहम्	—	आकार है
सुसूक्ष्मं	—	सूक्ष्म है	प्रत्यक्	—	प्रत्यक्
इदम्	—	यह	ज्योतिः	—	जोति
महत्	—	महान्	स्वरूपं	—	स्वरूप को
अमृतं	—	अमर भाव	अधुना	—	अब
एक	—	एक	युक्तितः	—	युक्ति करके
मुक्त	—	मुक्त पुरुष	कथ्यते	—	कहता हूं
मात्रं	—	मात्र से			

यह तत्व यहां पर जो तत्व कि अनारोपित स्वरूप है। और प्रमाण असंभव वाद में (वेद गुप्त) पद शिद्ध है ॥

शं—यह तत्व वेद गुप्त असिद्ध है निः प्रयोजन होने से ॥

सि—न अविद्या और अविद्या के कार्य से रहित होने से परम पुरुषार्थ (उत्तम सुख) रूप का विशेषण है ॥ और (नित्य) है ॥

शं—स प्रयोजत्व होने से वेद प्रमाणिक हुये मिथ्या होगा ॥ न-(सत्य) विशेषण है ॥

शं—तब सिद्ध होने से तिस तत्व को प्रमाण अंतर संवाद विप्रलम्भ वाद के द्वारा वेद अप्रमाण होगा ॥ न-(सूक्ष्म से भी सूक्ष्म) होने से और प्रमाण अनन्तर अयोग्य होने से वेद अप्रमाण न होगा ॥

शं—तब परिच्छिन्न होने से घटवत् अनात्मता होगी ॥

न—निः—उपचरित (महान) होने से अनात्मता असिद्ध है। और (मुक्त स्वभाव) है ॥

शं—मुक्त स्वभावत्व मुक्ति और तत्व का वास्तव भेद प्रतीति होने से महत न होगा ॥ न (अमृत) यह पुर्व उक्त तत्व का अमृत मुक्ति है। तहां विद्वानों के प्रत्यक्ष का प्रमाण है। (एक मुक्तमात्र) पुरुषों से (ज्ञात) है ॥ इस प्रकार तत्पद के लक्ष को निरूपण करके अब तत्पद का वाच्य कहते हैं ॥ (शिव) पद से अब ईश्वर का कथन है। इस हेतु से ईश्वरत्व का प्रतिपादन करते हैं ॥ (यस्य) जिसके (अंश) के (लेशमात्र) से यह सर्व (जगत्) संसार है ॥

शं—जगत् के उपादानता से विकारी होगा ॥ न (भ्रांति) एक भ्रममात्र जगत् का आकार है। अर्थात् अज्ञान ही है स्वरूप जिसका वह एक भ्रांति मात्र देह वाला है। (भ्रांति मात्र) जगत् का विशेषण है। तिस

करके जगत् का उपादान आत्मा वास्तव से नहीं है ॥ क्योंकि भ्रांति रूप जगत् और तत्व दोनों में सत्यता की प्रशक्ति होगी ॥

शं—तब आत्मा को कारणता का उपदेश क्यों किया है ॥

सि—जगत् का उपादान अज्ञान के अधिष्ठान होने से उपादानत्व कहा है। इस हेतु से आत्मा विकारी नहीं है ॥ (प्रत्यक्) जड अनात्मतारूप बाह्यत्वादि रूप जगत् के अपेक्षा से प्रतिकूल विपरित जड़ विरुद्ध रूप से अन्तरादि भाव से अचिन्त उपलक्षित हो वह प्रत्यक् है । प्रत्यक् में हेतु (ज्योति स्वरूप) विशेषण है। तिसका कथन अप्रस्तुत है ॥ (अधुना) शिष्य के जिज्ञासा के उत्तर काल में ॥

शं—तिसके कथन से और कथन के ज्ञान से क्या अर्थ सिद्ध है ॥

सि—(युक्तितः) अप्रतिपति विप्रतिपति के निरास करके वेद का अर्थ प्रगट होने के निमित और योग्यता संपत्ति के निमित युक्ति से निरूप्यते हैं ॥ इस हेतु से वेद गुप्त) कहा है ॥

शं—एक वस्तु में भान अभान एक साथ युक्त नहीं है। परंतु यह अनुभव सिद्ध है कि मैं अपने को जानता हूं मैं अपने को नहीं जानता हूं। इस अनुभव से आत्मा स्वयं ज्योति स्वरूप कैसे सिद्ध हो शक्ता है ॥

सि—यह दोष नहीं है ॥ क्योंकि ज्ञात अज्ञात से आत्मा को विलक्षण होने से "अन्यदेव तद्विदितादथोविदितादधि" ज्ञात अज्ञात से आत्मा अन्य है। यह श्रुति प्रमाण है ॥

शं—फिर मै अपने को जानता हूं इस अनुभव की क्या गति होगी ॥

सि—इस अनुभव का विषय अज्ञान विशिष्ट है। शुद्ध निर्विकल्प आत्मा विषय नहीं है। जो कि इस ज्ञान का विषय आत्मा होवे। किन्तु उपाधि विशिष्ठ ही तिस अनुभव ज्ञान का विषय है। और तिस विशिष्ठ को स्वयं प्रकाशता भी नहीं है । किन्तु शुद्ध ही को स्वयं प्रकाशता अंगीकार है। और मैं अपने को नहीं जानता यह अनुभव आत्मा के स्वयं प्रकाशता का साधक है ॥ तथा यह अनुभव आत्माऔर अज्ञान को विषय करता है। तथा इस अनुभव से अज्ञान केसम आत्मा भी भान होता है। और मैं अपने को जानता हूं यह अनुभव से स्वप्रकाश करके भासमान आत्मा ही विषय है। अज्ञान लक्षण आवरण विषय नहीं है ॥ इस हेतु से एक साथ भान अभान हुये में स्वयं प्रकाश से अविरोद्ध है। मैं अपने को नहीं जानता इस अनुभव के बल से भी स्वयं प्रकाशत्व आत्मा का सिद्ध है ॥

शं—घट को मै नहीं जानता इस अनात्म विषय में भी इस सदृश्य का अनुभव है ॥ फिर घट को भी स्वयं प्रकाश होने का प्रसंग होगा ॥

सि—प्र—वह घट क्या है। जिस को स्वयं प्रकाशत्व की प्राप्ति है ॥

वादी—घटत्व आदि धर्म का धर्मी घट है ॥

सि—घट घटत्व का स्वरूप सम्यक अनुभव है वा भिन्न २ अनुभव है ॥

वादी—कपाल मृतिकादिक से आरंभित घट अव्यवी विशेष है ॥

सि—अव्यव अव्यवीत्वादिक घट संम्बन्ध से अन्य नहीं हैं। इस हेतु से यह घट का स्वरूप नहीं है ॥ इससे अन्य स्वरूप कहो ॥

वादी—इससे अन्य स्वरूप विशेषन हीं कह शक्के हैं ॥

सि—क्यों नहीं कह शक्के हैं ॥ घट अनुभव न होने से वा घट निर्विशेष होने से ॥ घट सर्व को अनुभव होने से आदि पक्ष असिद्ध है ॥ द्वितीय में निर्विशेष का अनुभव जो स्वरूप सो स्वयं अनभूत है वा पर प्रमाणों से अनुभूत है ॥ जो पर प्रमाणों से कहो तो निर्विशेष कहने से व्याघात दोष है। निर्विशेष वस्तु प्रमाणों का विषय संभव नहीं है। चक्षुरादिक लौकिक प्रमाण सविशेष वस्तु को विषय करते हैं यह नियम है। तिस हेतु से आदि पक्ष के हुये निविशेष वस्तु सर्व वाँड़ी मन आदिक का अविषय स्वयं भास मान वस्तु जो आत्मा वही घट स्वरूप अवशेष है ॥

शं—वह घट आत्मा से भेद वान है वा नहीं हैं ॥

सि—आत्मा से घट का भेद नहीं है। भेदक धर्म के अभाव होने से। निर्विशेष होने से। धर्मी भेद के प्रतियोगी घट आत्मा दोनों को स्वयं प्रकाश होने से। तिस का विशेषित भेद प्रमाण से ग्रहण करने को अशक्य है। तिस हेतु से स्वयं प्रकाश आत्मा स्वरूप ही घट है ॥ इस प्रकार सर्व पदार्थ आत्मा स्वरूप होने से अनात्म वस्तु आत्मा से भिन्न कदाचित नहीं है ॥ जो अनात्मा में स्वयं प्रकाश की प्राप्ति है। सो आत्मा से भिन्न नहीं है। किन्तु आत्मा में ही प्रतिपादित हैं। इस हेतु से स्वयं ज्योति स्वभाव आनन्द घन असंग उदासीन हीं आत्मा अनादि अनिर्वचनीय अविद्या के संबंध से द्वैत आकार से भान होता है। रज्जु के सम सर्प दंडादि के सदृश्य। परमार्थ से न द्वैत है न अद्वैत है किन्तु आत्मा ही केवल विज्ञान घन अनिर्वाच्य सिद्ध है ॥ सिद्धांत संग्रह का श्लोक—

यस्य भासा सर्वमिदं भाति स्थावर जङ्गमम् ।
तदहं ब्रह्म पूर्णस्यां पुरुषार्थ सुखात्मकम् ॥ १ ॥

अर्थात्—जिसके प्रकाश करके यह सर्व स्थावर जंगम जगत् प्रकाशित है। वह पूर्ण पुरुषार्थ सुख रूप ब्रह्म मैं हूं ॥ १ ॥ २४ ॥

इति श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री सरजू
पारगतम भवली राजधानी से पंच कोश
नैऋत में श्रीसरजू के तट बरहज नग्र
नीवासी श्री १०८ श्रीस्वामी अनन्त
जी पूज्य पाद का अल्पज्ञ शिष्य
स्वामी उमानन्द कृत् वेदान्त
सिद्धांत मुक्तावली वाल
बोधिनी पददीपिका
टीका भाषाभाष्य
गत प्रथम भाग
पूर्वार्द्ध समाप्तः
॥ इति ॥

॥ हरिः ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु ॥

ॐ

॥ श्रीगणेशायनमः ॥ श्रीगुरुभ्योनमः ॥

॥ वेदान्त सिद्धान्त मुक्तावली ॥

॥ उत्तरार्द्ध ॥
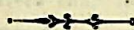
॥ भाषा टीका ॥

॥ मङ्गला चरणं ॥

श्रीगुरु चरणेनत्वा यद्वाक्यं रवि कृणिना ।
अज्ञानान्ध दूरं गत्वा सुखाब्धिं प्रगटी भवेत् ॥१॥
काय कष्ठ विपाकेण मनो विकल्पं शुद्धया ।
गुरु गोविंदौकृपया यत्पुर्वार्द्धं उदाहृता ॥२॥
आत्मा नन्द सहायेण तद्विषदाय चिकृष्या ।
उतरार्द्धं कथिस्यामि उमानन्दो सुखी भव ॥३॥

॥ उतरार्द्ध कारीका प्रारम्भः ॥

आत्मा को सर्व घट पटादि रूप प्रकाशित होने से सिद्धांती पूर्वार्द्धं के अन्त के चौवीसवें कारीका में आत्मा को परम पुरुषार्थ सुखरूप सिद्ध प्रतिपादन किया हैं । तिस आत्मा के पुरुषार्थत्व में वादी का आक्षेप है—

॥ कारीका ॥

वा—आत्मायं सर्व संबंद्धो भानु भासक उच्यते ।
नित्योयमविनाशीत्वादुपादेयःकथंभवेत् ॥२५॥

॥ पदच्छेद ॥

आत्म-अयं-सर्व-संबंद्धः-भानु-भासक-उच्यते ।
नित्यः-अयम्-अविनाशी-त्वात्-उपादेयः-कथं-भवेत ॥

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

अयं	—	यह आत्मा	अयम्	—	यह
उपादेयः	—	पुरुषार्थ रूप	आत्म	—	आत्मा का
कथं	—	कैसे	सर्व	—	सर्व से
भवेत्	—	है	संबंद्धः	—	संबंद्ध है
नित्यः	—	नित्य	भानु	—	सूर्य के सम
अविनाशी	—	नाश रहित	भासक	—	प्रकाशक
त्वात्	—	होने से	उच्यते	—	कथन है

॥ भावार्थ ॥

हे सिद्धांतो इस लोक और स्वर्गादि लोक के सुख साधन से विमुख और जन्म जन्मांतर के पुण्य कृत् उद्भूद वैराग से संपन्न और पापादि दोष से रहित सर्व विषयों में दोष दर्शी परम पुरुषार्थ के जिज्ञासु के प्रति यह आत्मा पुरुषार्थ रूप कैसे है। यद्यपि यह आत्मा विनाश सामग्रि से रहित नित्य है। तथापि पुरुषार्थ साध्य होने से नित्यत्व की असिद्धि है। परिच्छिन्न होने से ॥

सि—आत्मा होने से परिच्छिन्नता की असिद्धि है। सो कहा है—श्लोक में—

यच्चाप्नोति यदादत्ते यच्चात्ति विषयानिह ।
यच्चास्य संततो भावस्तस्मादात्मेतिकथ्यते ॥१॥

अर्थात्—जिससे यह समस्त विषय व्याप्त हो और जिस में समस्त विषय विलिन हो। और जिसमें समस्त विषय प्रकाशित हो वह आत्मा है। और जिससे यह निरूपण करके निरंतर भाव की स्थिति अपने स्वरूप में हो अनात्म में न हो उसको आत्मा कहते हैं। १॥

शं—आकाश भी व्यापक और नित्य दर्शित होने से आत्मा हुआ चाहिये ॥

सि—न- सर्व संबंधी को व्यापकपना है। सो सर्व रूप होने से आत्मा में सर्व संबंधीत्व और सर्व अधिष्ठानत्व से व्यापकत्व है ॥

शं—काल देश वस्तु से अपरिच्छिन्न भी आत्मा में प्रमाण की अपेक्षा है ॥

सि-न—भानु सूर्य के प्रकाश के समभास मान होने से सर्व जगत् का प्रकाशक श्रुति से प्रसिद्ध है। "तमेव भातमनु भाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति" तिस ही आत्मा के प्रकाश से

सर्व सूर्यादि ज्योतियां लोक को प्रकाशती हैं। और तिस ही के प्रकाश से यह सर्व प्रकाशित हैं ॥

शं— सुख दुःख के अभाव से अन्य रूप हुये आत्मा, अपुरुषार्थ रहै ॥

सि-पू— यह आत्मा अपुरुषार्थ क्यों है ग्रहण क्रिया का विषय न होने से वा इच्छा का विषय न होने से। सो आदि पक्ष मुझे भी इष्ट है। फिर आपका सुख दुःख अभाव भी ग्रहण क्रिया का विषय नहीं हो शक्ता है ॥ और ज्ञान के विषय को इच्छा का विषय होने से इच्छा के विषय को भी उपादेयता होगी ॥

शं— इच्छा का विशेष विषय पुरुषार्थ होवे।

सि-न— मैं स्वर्गी होउं इस सदृश्य आत्मा मैं भी आपत्ति होगी। इस हेतु से इच्छा के विरह से भी आत्मा अपुरुषार्थ सिद्ध नहीं होता है। फिर आत्मा के पुरुषार्थ रूपता में आपको क्या संशय है ॥

वादी— सुख दुःख अभाव तिसका साधन पुत्र कलत्र गौआदिक पुरुषार्थ कथन होने से मुझे आत्मा के पुरुषार्थत्व में संशय है ॥

सि— "विज्ञान मानन्दं ब्रह्म" विज्ञान आत्मा आनन्द रूप ब्रह्म है। सुख स्वरूप आत्मा ही को श्रुति कथन किया है ॥

शं— सुख स्वरूपता से आत्मा पुरुषार्थ रूप सिद्ध नहीं हो शक्ता। और न सुख पुरुषार्थ है। अपना संबंधी पुरुषार्थ होने से ॥ अन्यथा शत्रु के सुख भी पुरुषार्थ होगा। इस हेतु से दुःख परिहार के योग्य सुख पुरुषार्थ है ॥

सि— यदि आत्मा पुरुषार्थ नहीं है। तब आत्मज्ञान के अर्थ श्रवण की विधि वेद क्यों विधान किया है ॥

वादी— दुःख परिहार के अर्थ श्रवण विधि है ॥ २५ ॥

सि— फिर दुःख परिहारकपना आत्मा में प्राप्त हुये आत्मा को पुरुषार्थत्व की प्राप्ति श्लोक से व्याख्यान करता हूं—

सि—य आत्मा सर्व वस्तुनां यदर्थं सकलं जगत्।
आनन्दाब्धिः स्वतंत्रोसावनादेयः कथंवद ॥२६॥

॥ पदच्छेद ॥

य–आत्मा–सर्व–वस्तुनां–यत्-अर्थं-सकलं-जगत्।
आनन्द-अब्धिः-स्वतंत्रः-असौ-अनादेयः-कथं-वद ॥

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

असौ	— उस आत्मा को	जगत्	— संसार है
अनादेयः	— अपुरुषार्थ	आनन्द	— सुख का
कथं	— कैसे	अब्धिः	— समुद्र है
वद	— कहते हो	य	— जो
स्वतंत्रः	— स्वतंत्र आत्मा	आत्मा	— आत्मा
यत्	— जिसके	सर्वं	— समस्त
अर्थं	— अर्थ	वस्तुनां	— वस्तुओं का स्वरूप है
सकलं	— समस्त	— —	—

॥ भावार्थ ॥

हे वादी उस आत्मा को अपुरुषार्थ रूप कैसे कहते हो। जो अन्य के त्याग से रहित (स्वतंत्र) है ॥

शं—अन्य से अत्याग रूप कैसे है ॥

सि—सर्व के सुख दुःख के अभाव का शेष होने से। तिस अत्याग रूपता में कहता हूं (यत्) जब जिस आत्मा के अर्थ सर्व जगत् है तब आत्मा शेष है ॥ फिर सुख दुःखादिक के शेष आत्मा में क्या कथन है ॥ सो कहा है कि सुख को पुरुषार्थ होने से आत्मा से अतिरिक्त सर्व पदार्थों का प्रार्थना है ऐसा वैशेषिकों ने सग्रह किया है। (सुखं च पुरुषार्थत्वात् इति आत्म व्यतिरिक्तानां सर्वेषां पदार्थानां प्रार्थत्वं)। तिस हेतु से आत्मा के अर्थ सर्व जगत् है ॥

शं—सुख दुःख अभाव से अन्यत्र हेतु का स्वरूप असिद्ध है ॥

सि—कहता हूं (आनन्द अब्धि)नाम निरतिशय सुख रूप आत्मा है ॥ अब दुःख का अभावत्व प्रतिपादन करते हैं ॥ (य) जो आत्मा सर्व वस्तु स्वरूप है ॥ अर्थात् घट पटादिक आत्मा के स्वरूप तिस आत्मा के भेद से घट पटादिकों का स्वरूप दुर्निरूप्य होनेसे असत्य होने से आत्मा से भिन्न असत्य का अभाव है। इस हेतु से सत्य ही अभाव है। अभाव का भाव होने से। और सत्य को आत्मा होने से ॥ इस युक्ति से आत्मा ही दुःख का अभाव है। फिर कैसे अन्यत्र हेतु का स्वरूप असिद्ध हो शक्ता है नहीं हो शक्ता ॥ २६ ॥

(यत्) पदका (असौ) पद से संबंध है तिस (यत्) के अर्थ को प्रतिपादन करते हैं—

सि—यदन्यद्वस्तु तत्सर्वं यद्भेदे नर शृंगवत् ।
सत्तासर्व पदार्थानामनादेयःकथं वद ॥२७॥

॥ पदच्छेद ॥

यत्-अन्यत-वस्तु-तत्-सर्वं-यत्-भेदे-नर-शृङ्ग-वत्। सत्ता-सर्व-पदार्थानाम्-अनादेयः-कथं-वद॥

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

यत् --	जिस आत्मा से	शृंगवत् --	शिंग तुल्य शून्य हैं
अन्यत् --	अन्यत्र	सर्व --	समस्त
वस्तु --	घटादिक	पदार्थानाम् -	पदार्थों का
तत् --	सो	सत्ता --	सत्ता आत्मा को
यत् --	जिस आत्मा के	अनादेयः --	अपुरुषार्थ
भेदे --	भेद से	कथं -	कैसे
सर्वं --	सर्व	वद —	कहते हो
नर --	मनुष्य के	--	-- --

॥ भावार्थ ॥

हे वादी जिस आत्मा से भिन्न करके पर वादियों ने घटादिक वस्तु माना है। सो सर्व घटादिक वस्तु जिस आत्मा के भेद से मनुष्य के शृङ्ग तुल्य स्वरूप से शून्य हैं असत्य हैं। इस हेतु से आत्मा सर्व घट पटादिकों का सत्ता स्वरूप है॥ तथा स्वस्वरूप का इच्छावान सर्व को होने से स्वस्वरूप ही पुरुषार्थ रूप है॥ फिर तिस आत्मा को अपुरुषार्थ रूप कैसे कहते हो॥ २७॥

श्लोक के द्वितीय (यत्) पद का व्याख्यान करते हैं—

सि—यद्वशे प्राणिनः सर्वे ब्रह्माद्या कृमयस्तथा।
ईशानः सर्व भूतानामनादेयः कथं भवेत ॥२८॥

॥ पदच्छेद ॥

यत्-वशे-प्राणिनः-सर्वे-ब्रह्म-आद्या-कृमयः-तथा।
ईशानः-सर्व-भूतानाम्-अनादेयः-कथं-भवेत् ॥

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

ब्रह्म —	ब्रह्मा	वशे —	वश में हैं। और
आद्या —	विष्णु शिवादिक	सर्व —	सर्व
तथा —	तैसे ही	भूतानाम् —	भूतों का
कृमयः —	कृमि प्रयंत	ईशानः —	ईश है। वह
सर्वे —	सर्व	अनादेयः —	अपुरुषार्थ रूप
प्राणिनः —	प्राणि	कथं —	कैसे
यत् —	जिसके	भवेत् —	हो शक्ता है

॥ भावार्थ ॥

हे वादी ब्रह्मा विष्णु शिवादिक और तैसे ही कीट पतंग प्रयंत समस्त प्राणि जिस आत्मा के वश में हैं। और सर्व वस्तु घट पटादिकों का जो ईश है। वह आत्मा अपुरुषार्थ रूप कैसे हो शक्ता है॥ २८ ॥

अब स्फूर्ति का प्रदाता ज्ञात कराने के हेतु से प्रकाशकता श्लोक से कथन करता हूं —

सि—यच्चक्षुः सर्व भूतानां मनसो यन्मनो विदुः ।
यज्ज्योतिर्ज्योतिषां देवो नोपादेयः कथंविभुः ॥२९॥

॥ पदच्छेद ॥

यत्-चक्षुः-सर्व-भूतानां-मनसः-यत्-मनः-विदुः ।
यत्-ज्योतिः-ज्योतिषां-देवः-न-उपादेयः-कथं-विभुः ॥

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

सर्व	— समस्त	यत्	— जो आत्मा
भूतानां	— प्राणियों का	ज्योतिषां	— ज्योतियों का भी
यत्	— जो आत्मा	ज्योतिः	— ज्योति है। वह
चक्षुः	— नेत्र है। और	विभुः	— व्यापक
मनसः	— मन का भी	देवः	— आत्म देव
मनः	— मन हुआ	कथं	— कैसे
यत्	— जो आत्मा	उपादेयः	— पुरुषार्थ रूप
विदुः	— ज्ञाता है	न	— नहीं है

॥ भावार्थ ॥

हे वादी समस्त भूत प्राणियों का जो आत्मा नेत्र है और मनका भी मन हुआ जो आत्मा सर्व का ज्ञाता है। और सर्व चंद्र सूर्यादिक ज्योतियों का जो आत्मा ज्योति है वह व्यापक देव कैसे पुरुषार्थ रूप नहीं है अवश्य पुरुषार्थ रूप है॥ २९ ॥

अब (आनन्दाब्धि) पद का व्याख्यान करते हैं——

सि—मोदप्रमोदपक्षाभ्यामानन्दआत्मातमोगतः ॥
जीवयदखिलानूलोकानऽनादेयःस्वयंकुतः ॥३०॥

॥ पदच्छेद ॥

मोद-प्रमोद-पक्षाभ्याम्-आनन्द-आत्मा-तमः-गतः ।
जीव-यत्-अखिलान्-लोकान्-अनादेयः-स्वयं-कुतः ॥

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

मोद — इष्ट स्मरण का सुख		आत्मा — आत्मा	
प्रमोद — भुक्त मान सुख		अखिलान् — समस्त	
आनन्द — आनन्द		लोकान् — लोकों (जीवों) को	
पक्षाभ्याम् — पक्ष के द्वारा		जीव — जीवावता है	
तमः — अज्ञान के		अनादेयः — अपुरुषार्थ रूप हुये	
गतः — वश हुआ		स्वयं — स्वतंत्र	
यत् — जो		कुतः — कहां हो शक्ता है	

॥ भावार्थ ॥

हे वादी इष्ट के स्मरण में हर्ष मोद और वही इष्ट अभ्यास के वश से भोग्य हुये प्रकृष्ट प्रमोद सुख मात्र आनन्द तिसआनन्द के पक्षादि पृयमोद प्रमोद का कल्पना आत्मा के अज्ञान के वश से है। सो आत्मा अपने सुख मात्र से समस्त लोक प्राणियों को आनन्दित करना है जीवावता है। वह आत्मा अपुरुषार्थ रूप हुये स्वयं,स्वतंत्र कहां हो शक्ता है ॥ ३० ॥

अब श्लोक के उत्तरार्द्ध का स्पष्टार्थ करते हैं—

सि—यस्यानन्दसमुन्द्रस्य लेशमात्रंजगद्गतं ।
प्रसृतंब्रह्मलोकादौ सुखाब्धिकःपरित्यजेत् ॥३१॥

॥ पदच्छेद ॥

यस्य-आनन्द-समुन्द्रस्य-लेश-मात्रं-जगत्-गतं ।
प्रसृतं-ब्रह्म-लोक-आदौ-सुख-अब्धि-कः-परित्यजेत् ॥

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

यस्य — जिसके	लोक — लोक से
आनन्द — सुख	आदौ — आदि सर्व लोक में
समुद्रस्य — सागर के	प्रसृतं — फैला हुआ है
लेश — लेश	सुख — आनन्द
मात्रं — मात्र से	अब्धिं — समुन्द्र को
जगत् — संसार	कः — कौन
गतं — प्राप्त है। और	परित्यजेत्— त्यागेगा
ब्रह्म — ब्रह्म	— — —

॥ भावार्थ ॥

हे वादी जिस आत्मा के सुख सागर के लेश मात्र से यह संसार प्राप्त है। और ब्रह्मलोक से आदि सर्वलोक में वह आनन्द फैला हुआ है। इस सुख-सागर आत्मानन्द का कौन त्याग कर शका है। कोई नहीं त्याग कर शका है ॥ ३१ ॥

आत्मा के निरतिशय सुख रूप में हेतु का श्लोक--

सि–हैरण्यगर्भमैश्वर्यं यस्मिन्दृष्टे तृणायते।
सीमासर्वपुमर्थानामपुमर्थः कथं भवेत् ॥३२॥

॥ पदच्छेद ॥

हैरण्यगर्भम्–ईश्वर्यं–यस्मिन्–दृष्टे–तृणायते।
सीमा–सर्व-पुम्-अर्थानाम्–अपुम्-अर्थः–कथं-भवेत् ॥

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

यस्मिन्	— जिसके	अर्थानाम्	— अर्थों का। जो
दृष्टे	— साक्षात्कार से	सीमा	— अवधि। सो
हैरण्यगर्भम्	— हिरण्य गर्भ की	अपुम्	अपुरुष
ईश्वर्यं	— ऐश्वर्यता	अर्थः	— अर्थ (अपुरुषार्थ)
तृणायते	— तृणसम हो जाती है	कथं	-- कैसे
सर्व	— समस्त	भवेत	-- होगा
पुम्	— पुरुषों के	—	— —

॥ भावार्थ ॥

हे वादी जिस आत्मा के साक्षात्कार हुये हिरण्य गर्भ की ऐश्वर्यता ब्रह्म-लोक का भोग तृण के सम तुच्छ हो जाती है। और सर्व पुरुषार्थों का जो अवधि है। वह आत्मा अपुरुषार्थ रूप कैसे होगा। नहीं हो शका है ॥ ३२ ॥

शं–आत्मा सर्व पुरुषार्थ का सीमा कैसे हो शक्ता है। (इदि परमैश्वर्य) इस स्मृति से इन्द्रादिकों को संपदा ही परम पुरुषार्थ रूप होने से आत्मा परम पुरुषार्थ रूप असिद्ध है। इस शंका के हुये कहता हूं:—

सि–यत्कामा ब्रह्मचर्यंत इन्द्राद्याः प्राप्त संपदः।
स्वस्वभोगांत्यजंत्येवमपुमर्थः कथं नृणाम् ॥३३॥

पदच्छेद

यत्-कामा-ब्रह्म-चर्यंत्-इंद्र-आद्याः-प्राप्त-संपदः।
स्व-स्व-भोगं-त्यजंति-एवम्-अपुम्-अर्थः-कथं-नृणाम् ॥

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

यत	— जिस आत्मा के	आद्याः	— आदिक
कामा	— कामना करके	एवम्	— इस प्रकार
संपदः	— संपदा को	ब्रह्म	— ब्रह्म
प्राप्त	— प्राप्त	चर्यंत	— चर्य धारण करते भये
स्व	— अपने	अपुम्	— अपुरुष
स्व	— अपने	अर्थः	— अथ (अपुरुषार्थ)
भोगं	— भोगों को	कथं	— कैसे
त्यजंति	— त्याग कर	नृणाम्	— निर्णय होगा
इन्द्र	— इन्द्र	—	— —

॥ भावार्थ ॥

हे वादी जिस आत्मा के कामना करके संपदा को प्राप्त हुआ अपने अपने भोगों को त्याग कर इन्द्र विरोचन आदिक प्रजापति ब्रह्मा के समीप ब्रह्मचर्य धारण करते हुये वास करते भये । "मघवा प्रजापतौ ब्रह्मचर्यमुवास" इन्द्रब्रह्मचर्य से ब्रह्मा के पास वसते भये इस श्रुति से सिद्ध है उस आत्मा को अपुरुषार्थ रुप कैसे निर्णय करते है ॥ ३३ ॥

शं—यदि आत्मा ही पुरुषार्थ रुप है । तब तिस आत्मा को उपेक्षा त्याग कर स्वर्गादिके अर्थ यज्ञादि का विधान शास्त्र क्यों किया है ॥ इस शंका के हुये श्लोक से कहता हूं—

सि—यदिदृक्षा फलाःसर्वावैदिक्योविविधाकृयाः ।
यागाद्याविहितास्तस्मिन्नुपेक्षावदते कथं ॥३४॥

॥ पदच्छेद ॥

यत्-इदृक्षा-फलाः-सर्वा-वैंदिक्यः-विविधा-कृयाः ।
याग-आद्या-विहिताः तस्मिन्-नु-पेक्षा-वदते-कथं॥

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

वैदिक्यः	—	वैदिक	यत्	—	जिस आत्मा के प्राप्ति को
विविधा	—	विविध प्रकार की	इदृक्षा	—	इच्छा है
याग	—	यज्ञ	तस्मिन्	—	तिस आत्मा से
आद्या	—	आदिक	नु	—	उतर्क
विहिता	—	विहित	पेक्षा	—	उपेक्षा
सर्वा	—	समस्त	कथं	—	कैसे
कृयाः	—	कृयायों का	वदते	—	कहते हो
फलाः	—	फल	—	—	—

॥ भावार्थ ॥

हे वादी "एतमात्मानं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषंतियज्ञेन" ब्राह्मण इस आत्मा को वेद के बचन करके यज्ञ करके जानने को इच्छा करते हैं॥ इस श्रुति से वैदिक नाना प्रकार की यज्ञादिक विहित समस्त कृयायों का फल अन्तः करण शुद्धि द्वारा जिस आत्मा कें प्राप्ति की इच्छा है। वास्तव से स्वर्गादिक फल नहीं है किन्तु आत्म इच्छा है। तिस आत्मा से उतर्क उपेक्षा कैसे कहते हो॥

शं--फिर स्वर्गादिक फल श्रुतियां क्यों कथन करती है॥

सि—अज्ञानी के प्ररोचन अर्थ होने से। अन्यथा सर्व प्रकार से यथार्थ वक्ता सर्वज्ञ पुरुषों ने क्षयरूप होने से स्वर्गादिकों को अपुरुषार्थ उद्देश करके अज्ञानीयों के रूचि कराने के अर्थ यागादिक का उपदेश करते हैं सो कैसे करेंगे। तिस हेतु से यज्ञ अज्ञानी के प्ररोचन अर्थ ही है। स्वर्गादिक का श्रवण फल के हेतु नहीं है। इस हेतु से कोई विरोध नहीं है॥ ३४॥

शं—स्वर्गादिक प्ररोचन अर्थ कहना अयुक्त है। आत्मा को इच्छा फल होने से यागादिक का फल आत्मा नहीं आत्मा अजन्य होने से और न अनुभव फल है अनुभव को अफल होने से न तिस आत्मा की इच्छा फल है तिसका ज्ञान मात्र फल होने से आत्मा को स्वतः फल होने से। स्वर्गादिक ही में वैदिक क्रिया के फल का तात्पर्य है॥ इस शंका के हुये श्लोक का व्याख्यान करता हूं—

सि—यदृष्टिमान्नतःसर्वाःकामाद्याःदुःख भूमयः।
विनश्यंतिक्षणेनासावुपादेयःकथं न ते॥३५॥

॥ पदच्छेद ॥

यत्-दृष्टि-मात्रतः-सर्वाः-काम-आद्याः-दुःख-भूमयः। विनश्यंति-क्षणेन-असौ-उपादेयः-कथं-न-ते ॥

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

यत्	—	जिसके	क्षणेन		क्षण में
दृष्टि	—	साक्षात्कार	विनश्यंति	—	विनाश हो जाती है
मात्रतः	—	मात्र से	असौ	—	वह आत्मा
सर्वाः	—	समस्त	ते	—	आपका
काम	—	कामना	उपादेयः	—	पुरूषार्थ रूप
आद्याः	—	आदिक	कथं	—	कैसे
दुःख	—	क्लेश की	न	—	नहीं है
भूमयः	—	भूमि	—	—	

॥ भावार्थ ॥

हे वादी जिस आत्मा के अज्ञान निवर्तक ज्ञान ब्रह्म साक्षात्कार मात्र से अज्ञान निरास हुये अज्ञान मूलक समस्त कामनादिक मय दुःख भूमि की एक क्षण में निवृति आत्मा रूप होने से आत्मा हीं पुरुषार्थ रूप है। इस हेतु से प्रोरोचन अर्थ ही स्वर्गादिकों का श्रवण है। और (मोद प्रमोद पक्ष के द्वारा) यहां आत्मा के सुख स्वरूप में प्रमाण हैं। "तस्य प्रिय मेंव शिरः" तिस आत्मा का प्रिय आनन्द हीं शिर है॥ और सुषप्ति से उठा हुया (सुखमहमस्वापसं) सुख से मैं सोया॥ यह परामर्स सिद्ध सुषुप्ति काल का सुख अनुभव आत्मा रूप है। वह सुख स्वरूप आत्मा आप को पुरुषार्थ स्वरूप कैसे नहीं है। अवश्य आत्मा पुरूषार्थ स्वरूप है॥ ३५॥

तिस आत्मा के सुख स्वरूपत्व मे प्रमाण कहते हैं श्लोक के द्वारा व्याख्यान है—

सि-अह्लाद रूपता यस्य सुषुप्ते सर्व साक्षिकी।
तत्रोपेक्षाभवेद्यस्यतदन्यःस्याज्पशुःकथ ॥३६॥

॥ पदच्छेद ॥

अह्लाद-रूपता-यस्य-सुषुप्ते-सर्व-सक्षिकी। तत्र-उपेक्षा-भवेत्-यस्य-तत्-अन्यः-स्यात्-पशुःकथं॥

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

यस्य	— जिसका	उपेक्षा	— उपेक्षा (त्याग)
आह्लाद	— आनन्द	भवेत्	— होवे
रूपता	— रूपता	तत्	— तिस पुरुष से
सर्व	— समस्त के	अन्यः	— भिन्न
सषुप्ते	— सुषुप्ति में	पशुः	— पशु
साक्षिकी	— साक्षिरूप है	कथं	— कैसे
तत्र	— तिस आनन्द से	स्यात्	— होते हैं
यस्य	— जिसको	—	— —

॥ भावार्थ ॥

हे वादी जिस आत्मा का आनन्द रूपता समस्त के सुषुप्ति में साक्षि रूप से अनुभव है। तिस आनन्द स्वरूप आत्मा से जिसको उपेक्षा (त्याग) होवे तिस पुरुष से भिन्न पशु कैसे होते हैं॥ अर्थात् वही पुरुष पशु है अन्य नहीं पशु हैं॥ तहां (सुखाविव)पद जो पूर्व पक्ष तिससे आत्मा में पुरुषार्थत्व साधने के निमित तिस आत्मा का प्रतियोगीत्व रूप से जो पुरुषार्थत्व का निरूपण है। तिसमें अनुमोद के हेतु विकल्प करते हैं॥ सत्य है इतर अनुपसजन (अन्य से अत्याग) रूप का पुरुषार्थ रूपता। सो इतर अनुपसर्जन की विश्रांति आत्मा में ही है। और सुख दुःख अभाव भी आत्मा रूप ही है। अन्यथा पर का सुख दुःख अभाव भी पुरुषार्थ होगा। तिस हेतु से आत्मा ही परम पुरुषार्थ रूप है सुख दुःख अभावरूप आत्मा को होने से॥

शं—भाव रूप आत्मा को दुःख अभाव आत्मक होना असंभव है॥

सि—होवे यह दोष यदि आत्मा में दुःख परमार्थिक हो तो। सो आत्मा में परमार्थिक दुःख है नहीं। किन्तु—

श्लो०—अज्ञानफणिफणा समुद्भूतदेहाद्यभिमान विषदंष्ट्राग्रवर्ति रागादिलक्षण हलाहलविषज्वाला प्रतिबद्धस्वात्मदृष्टिः॥

सवितरितमोवत्तन्निदुःखेपिस्वात्मनिरौरवाद्यनेक भेदभिन्ननरकव्रातसमुद्भूत दुःखौघमारोपयत्येव केवलं ॥१॥

अर्थ—अज्ञानरूपी फणि के फण से उत्पन्न हुआ देह अभिमान रूप विष दांत तिस दांत के अग्रवर्त्ति। राग आदि रूप हलाहल विष ज्वाला से प्रतिबद्ध हुई स्वआत्मा दृष्टि। फिर रवि अन्धकारसम निर्दुःख भी स्वआत्मा में

रौरवादिक अनेक भेद भिन्न नरक समूह से उत्पन्न दुःख औघका केवल आरोपण करते हैं ॥

सो आरोपित का अभाव अधिष्ठान से भिन्न नहीं है। किंतु अधिष्ठान से अभेद है। आरोपित होने से। और भेद हुये तिसको असत्य होने से। और असत्य का निषेध सत्य होने से ॥ इन हेतुयों से दुःख का अभावही पुरुषार्थ जो मानते हैं। तिसको भी आत्मा ही परम पुरुषार्थ है ॥

शं— आत्मा को परम पुरुषार्थ हुए संसारी असंसारी में अविशेषता की आपत्ति होगी ॥

सि— न-ज्ञान अज्ञान के द्वारा संसारी असंसारी का विशेषता है। तथा अज्ञानी ही भ्रांत हुआ कर्ता भोक्ता संसारी जरा मरणादि धर्मवान आत्मा को मानते हैं ॥ विद्वान अज्ञानी से विरुद्ध अकर्ता अभोक्ता असंसारी जरामरणादि धर्मों से शून्य स्वप्रकाश सच्चिदानन्द परिपूर्णादि जगत् का अधिष्ठान आत्मा को आगम आचार्य स्वअनुभव से एक वाक्य से साक्षात्कार करके समस्त दुःखादिकों का कारण अज्ञान को निवृत्त करके देशकाल वस्तु परिच्छेद से रहित परिपूर्ण आनन्द स्वमहिमा करके परितिष्ठित परमपुरुषार्थ रूप है। और समस्त कामना का सीमा होने से तिससे परे कामना करने योग्य नहीं है ॥

शं— ऐसा स्वभाव सिद्ध आत्मा का साक्षात्कार श्रुति जन्य कैसे हो शक्ता है। इन्द्रिय जन्यहिं ज्ञान साक्षात्कार होने से। और शब्द भी परोक्ष ज्ञान का जनक होने से ॥

सि— न- अपरोक्ष आत्मा में भी शब्द अपरोक्ष ज्ञान का जनक वेद विद्ममाने हैं। और अपरोक्ष योग्य वह्नि आदिकों में शब्दादियों करके परोक्षज्ञानजन्य होने से और परोक्ष ज्ञान भी अभ्यास से अपरोक्ष युक्त है। अनुमिति आदि में दृष्ट होने से ॥ अथवा शब्द से अपरोक्ष ज्ञान मत हो परंतु अपरोक्ष भ्रम का अज्ञान और अज्ञानका कार्य सर्पादि शब्द ज्ञान से न निवृत होगा। सो शब्द से अपरोक्ष ज्ञान नहीं होता इसे वादी के कथन में कहता हूं कि श्रवणादि अभ्यास से जनित शाब्दज्ञान से उत्पन्न भावना के संचितवान अन्तःकरण ही आत्मा के साक्षात्कार में करण है ॥

शं— भावना के अधिन साक्षात्कार के हुए मृत पुत्र की भावना से पुत्र का साक्षात्कार हुआ चाहिये ॥

सि— न- वह वाक्य वैदिक संस्कार से रहित लौकिक है। और मन से पुत्र का साक्षात्कार निषेध है। और आत्मा के साक्षात्कार में आगम ही जनक होने से। "तंत्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि" तिस उपनिषदी पुरुष को आपसे पूछता हूं ॥ इस श्रुति से आत्मा का उपनिषदत्व विशेषण है। अन्यथा "अप्रमेयं" अन्यप्रमाणों का विषय नहीं है ॥ इस वाक्य का बिरोध होगा। पुनः लौकिक वाक्य भी (दशमा तु है) इस वाक्य के सम आत्मा के अपरोक्ष ज्ञान का जनक दृष्ट हैं ॥

शं—फिर प्रमाण के स्वभाव की हानि होगी ॥

सि—न-प्रमाण का स्वभाव प्रमेय के अनुसारी होना है। और प्रमेय को नित्य अपरोक्ष होने से ज्ञानगतधर्म अपरोक्ष का नियम नहीं है। "यत्साक्षादपरोक्षात् ब्रह्म" जो साक्षात् अपरोक्ष ब्रह्म है॥ और "आत्मा सर्वान्तरः" आत्मा सर्व के अन्तर है ॥ इस वाक्य से आत्मा भी अपरोक्ष है ॥

शं—वह अपरोक्ष कैसा है। वास्तवीक है वा प्रमाता के समिप है। सो प्रमाता में ही इस आत्म अपरोक्ष की विश्रांति है। सो अपरोक्ष स्वभाववान आत्मा में परोक्ष ज्ञान का जनक वेद भ्रम हीं उत्पन्न करता है। क्योंकि अन्य रूप को अन्य रूप परोक्ष बोधित कर्ता होने से। और मोक्ष का साधन भूत आत्म साक्षात्कार को मन से जन्य हुये वैभिचारी मन रूपी करण से जन्य आत्म साक्षात् कार अप्रमाण होगा। और वेद भी प्रमाण नहीं है। अपरोक्ष रूप के अनअवबोधक होने से। और "वाङ्ग मनसातितः" वांडी मन से अतित है॥ इस श्रुति का व्याकोप होने से लौकिक वाक्य का भी विषय नहीं है। मुख्य अर्थ में वाध का अभाव होने से श्रुति का भी विषय नहीं है। लौकिक वाक्य के सम दोष होने से ॥ तिसा में सूरेश्वर उक्त प्रमाण का श्लोक है—

स्वभावतोऽखिलं वाक्यं संसर्गात्मकमेवहि।
परोक्षकृत्या च तथावस्तुवोधयति स्वतः ॥१॥

अर्थ—स्वभाव से समस्त वाक्य संसर्ग रूप परोक्ष वृति करके स्वतः वस्तु को बोधित करती हैं॥

सि—लक्षणा करके आत्मा का बोध है॥

शं—'तत्त्व मसि" आदि वाक्यों में लक्षणायुक्त नहीं है। क्योंकि एक भाग का त्याग और एक भाग के ग्रहण से श्रुत अर्थ का त्याग होगा ॥

सि—(तत्) (त्वं) दोनों पद की एक विभक्ति हुये दोनों पद के अर्थ का अभेद वाक्य अथ में प्रतित होता है॥

शं—दोनों पद विरोद्धी स्वभाव वान होने से संसारी असंसारी जीव परमात्मा का अभेद असंभव है। मुख्य अर्थ का अभाव करके लक्षण' अयुक्त है॥

सि—विरोद्धी स्वभाव के भेद ग्राहि प्रमाण के अन्तर विरोध होने से अविरोधी दोनों पदों के अंशों का अभेद बोधक लक्षणा है॥

शं—न—अंश त्याग ग्रहण हुये और अभेद किये से "अखडं यदद्वितीयं स्वजातीयादि भेद रहितं" इस श्रुति का विरोध है। और

अन्य था लक्षणा भी अखंड अद्वितीय प्रत्यक् आत्मा का बोध नहीं कर शक्ता है। और सर्व भेदग्राही प्रमाणों का विरोध होगा। और मुख्य अर्थ में कोई विरोध नहीं है। और शक्य लक्ष का संबंधी लक्ष्य आत्मा को असंग होने से किंचित संबंध नहीं है। असंबंधी लक्षित अदृष्ट होने से सर्वथा अनभिधेय अर्थ लक्षित नहीं हो शक्ता है। इस हेतुओं से लक्ष पदार्थ में मुक्ता प्रसंग होने से तिस लक्षणा में भी लक्षणा हुये अनवस्था होगी ॥ फिर आप (तत्) (त्वं) पदों से एक लक्षित करते हैं वा दोनों से दो अर्थ करते हैं। तिसमें आदि पक्ष असिद्ध है। एक पद का व्यर्थता प्रसंग होने से और पदार्थ वाक्यार्थ दोनों में अविशेषता की आपत्ति होने से अविशेष में वाक्य का अखंड अर्थ न होगा ॥ और न द्वितीय पक्ष सिद्ध है। लक्षणा के अभाव का प्रसंग होने से। और भिन्न पदों का अभेद कर्ता लक्षणा विरोधियों के अभेद का अभाव नहीं करता है। किंच वेदांत में "तत्त्वमसि" आदि वाक्य ही प्रधान हैं। और वाक्य तिसके उपकरण हैं। फिर प्रधान वाक्य में लक्षणा किस प्रकार हो शक्ती है ॥ यहाँ पर कोई वादी "तत्त्वमसि" आदि वाक्यों में लक्षणा नहीं अंगीकार करते हैं विरोधी जीव परमात्मा की एकतान होने से ॥

सि— सो समिचिन नहीं है रज्जुसर्पवत् एक के बाध से भी लक्षणा संभव है ॥

शं— संसारी जीव असंसारी परमात्मा य दोनों के मध्य किस का बाध है। परमात्मा के बाध हुये शास्त्र अपुरुषार्थ होगा। और श्रुति से सत्यता के लक्षण "त्रिकालाबाद्धत्वं सत्यत्वं" इस का भी विरोध होगा जिस हेतु से जीव का बाद्ध है सो जीव जड़ है वा चैतन्य है ॥

सि— चैतन्य का अभास हुये जड चैतन्य से विलक्षण है ॥

शं— निरूप चैतन्य का आभास असंभव है ॥

सि— निरूप गगन का आभास जल में दृष्ट है। "रूपंरूपं प्रति रूपो व भुव" इस श्रुति से "इदं सर्वं यदयमात्मा,, यह सर्व जो कुछ है सो यह आत्मा है ॥ इन श्रुतियों से सर्व अज्ञान और अज्ञान का कार्य बाध हुये केवल आनन्द रूप परमात्मा मोक्ष रूप शेष है ॥

शं— मोक्ष अर्थीयों की प्रवृति न होगी। बंध मोक्ष का भिन्न अधिकरण होने से और अन्य के मोक्ष अर्थ अपने नाश अर्थ कोई यतन सील नहीं हैं। फिर दुःख निवृति करके दुःख अभाव ही पुरुषार्थ रूप है। सो किसको है। जीवको स्वतः बाध होने से जीव में संभव नहीं है ॥

सि— "जीव आत्मा सत्यः" इस वाक्य से इस जीव करके आत्मा का बोध है। और सत्य से परमात्मा का अभेद श्रुति से सिद्ध है। "नान्योतोस्ति द्रष्टा" इस आत्मा से अन्य द्रष्टा नहीं है ॥ इस श्रुति से भेद का निषेध है। तिस जीवात्मा को यह पुरुषार्थ सिद्ध है ॥

शं०—स्वतः असंसारी एक मुक्त स्वभाव पुरुषार्थ रूप आत्मा को संसारी स्वभाव जीव आत्मा असंभव है ॥

सि—अविद्यादि उपाधि के संबंध से नभ नीलता के सम संभव है ॥

शं०—नहीं "रूपंरूपं प्रतिरूपोबभुव" इस वाक्य से आभास रूप जीव है । तिस आभास असत्य को पुरुषार्थता असंभव है ॥

सि—न-तिस वाक्य से तिस २ मनुष्य पशु आदि आकार शरीर को प्रति रूप पद से विवक्षित है । अथवा प्रतिविम्ब हीं जीव रहे । परन्तु असत्य प्रतिबिंबका (वही यह मुख) है इस प्रत्यभिज्ञा ज्ञान से बिंब के साथ अभेद न होगा ॥

शं०—तब बिंब प्रतिबिंब के अभेद हुये बिंब प्रतिबिंब व्यवहार कैसे होगा ॥

सि—एक ही स्वरूप सर्व कल्पना से रहित में मुख चंद्रवत् बिंब प्रतिबिंब स्वरूप त्रिविध व्यवहार उपाधि के प्रवेशता से आरोपण के अनन्तर दृश्य है । सो उपाधि गत प्रतिबिंब जीव नहीं है किंतु प्रतिबिंबत्व धर्म जीव है । तिस धर्म के भिन्न हुये प्रतिबिंब सत्य चैतन्य स्वरूप ही है । सो कहा है श्लोक—

उपाधिरंतः कपणंत्वमर्थे जीवत्वमाभासनं । अत्र तद्वत्तदन्विताचित्प्रतिविंवमेव मनन्वितामिह-विंवमाहुः ॥१॥

अर्थ—"तत्त्वमसि" वाक्य के (त्वं) अर्थ में उपाधि अन्तःकरण तिसमें आभास जीव तिस अन्तःकरण में तत् रूप तिससे अन्वित चित् का प्रतिबिंब है । तिसको मनन नसील पुरुषों ने बिंब रूप ही कहा है ॥ तिस हेतु से "तत्त्वमसि" आदि वाक्यों में प्रतिबिंबत्व धर्म का बाध समानाधिकरण कहा है ॥

शं०—यह कल्पना क्यों करते हो ॥

सि—पंचमकारीका के अनुयायी वेद वाह्य एक देशी को भी स्वीकार होने से ॥ ३६ ॥

शं०—न-यह अन्याय है लक्षणा वृत्ति करके "तत्त्वमसि" आदि वाक्यों में जीव आत्मा संसारी असत्य का और असंसारी परमात्मा का अभेद करके परिपूर्ण सच्चिदानन्द प्रत्यक् आत्मा का बोधन बिरूद्ध होने से । यहां पर श्लोक से कहते हैं—

सि–विरुद्धयोरभेदो हि न वेदेन प्रमीयते ।
अनन्यगतिकत्वेनमानांतरस्य वाधनं ॥३७॥

॥ पदच्छेद ॥

विरुद्धयोः-अभेदः-हि-न-वेदेन-प्रमीयते ।
अनन्य-गति-कत्वेन-मान-अंतरस्य–वाधनं ॥

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

विरूद्धयो:	— संसारी असंसारिका	अनन्य	— अन्य
अभेद:	— अभेद	गति	— गति
वेदेन	— वेद करके	कत्वेन	— करके
प्रमीयते	— प्रमाणिक	मान	— प्रमाण के
न	— नहीं है	अंतरस्य	— अंतर का
हि	— निश्चय कर	वाधनं	— वाध है

भावार्थ

हे वादी जो पूर्व में कहा कि "तत्त्वमसि" आदि वाक्यों में मुख्य अर्थ होने से लक्षणा का अभाव है ॥ क्योंकि विरोधी जीव परमात्मा का अभेद प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे विरोध होने से वेद करके प्रमाणित करना अशक्य है। वाक्य में मुख्य अर्थ अनुपपन्न होने से ॥ सो अखंडएक रस में तात्पर्य ग्राहक षटलिंग विद्यमान होने से तिस तात्पर्य का अभाव होगा लक्षणा के अभाव होने से ॥

शं–ब्रह्मात्मा के अभेद के निमित सर्व भेद ग्राही प्रमाणों का वाध अवश्य कहने योग्य है। क्योंकि संसारी असंसारी के भेद ग्राही प्रमाणों का वाध करके दोनों की एकता वेद बोधित् करे है। सो भेद ग्राही प्रमाणों के विद्यमान हुये कैसे मुख्य अर्थ की अनुत्पति है ॥

सि–परिपूर्ण ब्रह्म आत्मा एक रस अखंड अर्थ के सिद्धि निमित्त सर्व प्रमाणों के अनंतर वाध है। फिर अन्य गति करके किस अवाधित प्रमाण करके वह अर्थ सिद्ध है। यहां पर प्रमाण का वाध उचित नहीं है। किन्तु प्रमाण अंतर अवाध है। तिस करके अनुरोध करके मुख्य अर्थ की अनुत्पति को आलोचन करके वेद लक्षणा करके प्रत्यक् आत्मा ब्रह्म का एकता अवबोधन करता है। इस हेतु से महावाक्य में लक्षणा सिद्ध है ॥

शं–लक्ष्य अर्थ असंग होने से वाक्य अर्थ में सम्बन्ध न होगा।

सि–स्वतः असङ्ग भी है। परन्तु अविद्या अंतःकरण उपाधि से अविद्या आरोपित दिवा अन्ध उलूक के सम सूर्यतम के कल्पित संबंधवत वाक्य से सम्बन्ध है।

शं—कल्पित सम्बन्ध में परमार्थिक लक्षणा न होगी ॥

सि—यह मुझे इष्ट है। और लक्ष्य पदार्थ में मूकता प्रसङ्ग भी नहीं है। क्योंकि पदार्थ का प्रतिपादक "विज्ञानमानन्दंब्रह्म" विज्ञान आनन्द ब्रह्म है ॥ इस वाक्य से तत्पद का अर्थ प्रतिपादन होने से। और तिस लक्षण में लक्षणा अभाव हुये अनवस्था भी नहीं है ॥

शं—ज्ञानत्व धर्मादि विशिष्ट में लक्ष्य पदार्थ असिद्ध है ॥

सि—नाना उपाधि का सम्बंध व्यक्तिमात्र से अतिरिक्तअस्वीकार है। व्यक्तिगतही व्यवहार अनुगत है। इस हेतु से प्रतिबिंब में बिंबवत और त्वं अर्थ में (तत्) अर्थ साक्षी आदिवत् कह सक्ते हैं। और साक्षी के विपरीत हुये सर्व व्यवहार प्रमाण कृत का उच्छेद होगा। अज्ञात् वस्तु प्रमाण का अविषय साक्षी विना सिद्ध न होगी। और अज्ञात वस्तु प्रमाण सिद्ध हुये अज्ञान की निवृति प्रमाण से न होगी। अज्ञात प्रमाण सिद्ध हुये प्रमाण व्यर्थ होगा। भ्रम सिद्ध विषय प्रमाण का विषय न होने से ॥ तथा प्रमाण के प्रवृति के पुर्व ही अज्ञात रूप से साक्षि करके साधा जाता है। और प्रमेय प्रमाण को साक्षि विषय करती है। इस हेतु करके साक्षि भी विपरित नहीं होशक्ता है। तिस मैं सूरेश्वराचार्य का उक्त प्रमाण है। यहां पर प्रमाण का साक्षि साधक कहा है। तथा मिथ्या ज्ञान संशय ज्ञान प्रमाण से सिद्ध नहीं हैं अतिविरोध होने से और तिस आकार वृति जड होने से स्वयं प्रकाशता भी नहीं हैं। न भ्रम से सिद्ध हैं किन्तु दोनों को सिद्धि साक्षि से है। इसी प्रकार प्रमा को प्रकाशती है। इस में क्या असंभावना है। और (तत्) (त्वं) पद के अर्थ में एक अर्थ अनेक अर्थ की भी विकल्प नहीं है। एक अर्थ है भी परन्तु वाक्य प्रमाण जन्य ज्ञान को भेद भ्रम निवर्तक होने से। और एक पद व्यर्थ भी नहीं है तिस पद के विना विरोध का अभाव करके लक्षणा से अखंड" वाक्य अर्थ का प्रति पादन नहीं होने से। पद मात्र को अप्रमाण होने से। और प्रधान वाक्य में लक्षणा की अनुत्पत्ति भी नहीं है। क्योंकि अन्य से अत्याग योग्य अर्थ का प्रतिपादन ही प्रधान वाक्य है। सो प्रधान मुख्य लक्षणा करके जानी जाती है। कि इस से अन्य है। और न न्याय विरोध है। क्योंकि जहां प्रति पाद्य अर्थ शब्द शक्ति का विषय है तहांहिं न्याय का अवतरण होने से "यतो वाचो निवर्तंते अप्राप्य मनसासः" जिससे बाडी निवृत है और मन के सहित कोई इन्द्रियां प्राप्त नहीं हैं ॥ इस वाक्य से भी विरोध नहीं है ॥

शं—कर्तृत्वभोक्तत्व आदि अनेक संसार धर्म से निष्कृष्ट प्रत्यक् आत्मा का शुद्धचित् अंश परमात्मा जगत्कर्त्ता परिपूर्ण चिदानन्द से अभेद लक्षणा करके वेद बाधित करता है। सो यह प्रतिपादित रहे। परंतु सर्व भेद का निरास नहीं है। अनात्मा का भेद तिस परमात्मा से स्थित होने से ॥

सि- न-जैसे आत्मा परमात्मा का भेद ग्राही प्रत्यक्षादि अप्रमाण है तैसे अनात्म भेद ग्राही अप्रमाण हैं। आत्मा परमात्मा के भेद ग्राही प्रमाण असिद्ध है। दोनों को स्वयं प्रकाश होने से। और प्रमाण का अविषिय होने से विरोध अभेद ग्राहक "तत्त्वमसि" आदि वाक्यों से वाधित होने से। अ.र न अनात्म भेद ग्राही प्रत्यक्षादि वाधक हैं। और अनात्म स्वरूप का विषयो प्रत्यक्षादि प्रमाण भेद के विषयी भो नहीं हैं। और धर्मी आत्मा परमात्मा का प्रतियोगी भेद के ग्रहण में आत्माश्रयादि अनेक दोष हैं। और स्वरूप का स्वरूप से भिन्न भेद अविषयत्व भी स्वरूप भेद विषयत्व स्वरूप का अहंता होने से स्वरूप से भिन्न नहीं है। प्रतीति के अभाव होने से (राहुशिर आत्मा चैतन्य) के सम भेद उत्पन्न है। भेद स्वरूप शब्दों को पर्याय की भी आपत्ति नहीं है। भेद और स्वरूप दोनों शब्दों में अपने २ व्यवहार में अन्य का अपेक्षा निर्पेक्षा के द्वारा विशेषता है। तिनके अभेदता में विरोध नहीं है। जैसे (देवदत्त) पुत्र के अपेक्षा से पोता है। इन हेतुयों से भेद और स्वरूप का भिन्नता असिद्ध है ॥

फिर हे वादी अज्ञान का कार्य प्रपंच पूर्व में कहा है तिसको प्रत्यक्षादि प्रमाणों के अनुरोध से परमात्मा से भेद का शंका कैसे करते हैं ॥

वादी- तिस अनात्म प्रपंच की असिद्धि नहीं होने से और ब्रह्म का कार्य होने से और बहुत श्रुतियों से श्रवण होने से। "सदेव सोम्येदमग्रे आसित" हे शिष्य इस जगत् के पूर्व में सत्य ही था ॥

" यतावाइमानिभूतानि जायन्ते " जिससे यह सर्व भूत उत्पन्न हुये ॥ " तस्माद्वाएतस्मादात्मनः आकाश संभूत " मंत्र भाग से ब्राह्मण भाग से इस आत्मा से आकाश उत्पन्न हुआ ॥ इत्यादि श्रुतियों से और (जन्माद्यस्ययतः) जिससे जिस जगत् की उत्पति स्थितिलय है। इस व्याससूत्र से भी ब्रह्म कृत् जगत् है ॥

सि- अज्ञान का कार्य जगत् बहुत श्रुतियों से सुना है। "मृत्युनैवेदमावृतमासीत्तद्ध तर्ह्यव्याकृतमासीत" यह अविद्या ही आवृत थी सोई अव्याकृत थो ॥ "नसदासीन्नासदासीत्तम आसीत" नसत्य था न असत्य था न किन्तु तम (अज्ञान) था ॥ "इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप इयते" आत्मा माया के द्वारा नाना रूप धारण करता है ॥ "मायां तु प्रकृतिं विंद्यात्" माया ही विलक्षण प्रकृति रूप को प्राप्त होता है ॥ इत्यादि श्रुतियों से माया मात्र समस्त जगत् है ॥

शं- तब श्रुतियों का परस्पर विरोध होने से माया ब्रह्म दोनों कारण नहीं हैं। किन्तु यथा योग्य परमाणु आदिक कारण हैं। तिस करके अनात्म का भेद प्रत्याक्षादि प्रमाणों से सिद्ध जाग्रत् में कैसे अद्वैत की सिद्धि है ॥ सो यह संग्रह है कि आत्मा के भेद में भी प्रमाण है ॥ सत्य उपादान प्रमाणु आदिक हैं तिनका कार्य प्रपन्च भी सत्य है ॥ जैसे सत्य उपादान का

सत्यता पृथिवी का कार्य घटादिकों में पृथिवीत्व जाती है। तिस हेतु से अद्वैत प्रसिद्ध नहीं है। और अनात्म भेद में प्रसिद्ध प्रत्यक्षादि प्रमाण हैं॥

सि— हे न्यायिक आपको श्रुतियों का परिज्ञान नहीं है। क्योंकि "तत्वमसि" आदि श्रुतियां अनात्म भेद पृथक स्थापित नहीं करती हैं। किन्तु शुद्ध अंशों के अभेद के बाधन में श्रुतियों का तात्पर्य है। और प्रत्यक् चैतन्य कूटस्थ में जाग्रतादि कर्तृत्व आदि अनर्थ व्यभिचारी संवर्तित हैं। साक्षी में अध्यस्त हैं। और अन्वय व्यतिरेक द्वारा साक्षि से भिन्न हुये तिस प्रपंच का स्वरूप ही अभाव है। शुद्ध प्रत्यक् आत्मा करके ब्रह्म के अभेद के सिद्धि अर्थ ब्रह्म में भी कारणत्व परोक्षत्व आदि धर्म अनुगत तिस सच्चिदानन्द में अध्यारोपित असत्य भ्रांति से प्रतीति है। यह अन्वय है। और अध्यारोप अपवाद का आश्रय करके सृष्टि वाक्य के प्रवृति अनन्तर "नेति नेति" आदि वाक्यों से अपवाद है॥ यह व्यतिरेक है। इस हेतुओं से शुद्ध (तत्वं) पदों का अर्थ लक्ष्य अंशो में प्रत्यक्षादि प्रमाण अनात्म भेद विषयियें का निरास है। सो भेदकारी अनात्मा का परमात्मा से संबंध इन दोनों का भेद है वा अभेद है। ऐसे प्रमाण को न देखकर संशय आत्मक संसार रोग से ग्रसित उद्वेग से ब्रह्मलोक को भोग भीविष तुल्य मानने वाले "तरति शोकमात्मवित" आत्मवेता शोक से तरते हैं॥ इस श्रुति से संसार दावानल का समनकारी अमृत अद्वय आत्म विद्या को जानते हैं। परम जिज्ञासुस्वरूप अपरोक्षदर्शी परम कारुणिक गुरूके समीप वास करके शुद्ध (तत्वं) पद के अर्थों का अभेद "तत्वमसि" आदि वाक्यों से बोधित हुआ स्वयंही अद्वैत तत्व को साक्षात्कार कर के स्व आनन्द में तृप्त आत्मारामी होते हैं। यह श्रुति के अभिप्राय का आप को अज्ञान है। जोकि अनात्म भेद से अद्वैत की हानि कहते हैं। और स्वरूप भेद प्रत्यक्षादि प्रमाणों का विषय कहा सो तुच्छ है। प्रत्यक्षादिकों को असत्य ग्राही होने से। और शुद्धनिर्धर्मक ब्रह्मात्मा प्रत्यक्षादि चक्षु आदिकों का अविषय होने से। " नचक्षुसा गृह्यते नैव वाचा नान्यैर्दें वस्त पसा कर्मणा वा " चक्षु वाणी तप कर्म और किसी अन्य से भी ग्राह्य नहीं है॥ इत्यादि श्रुतियों का विरोध होने से। और विशिष्ट विशेषण के भेद में विशिष्ट स्वरूप के अन्तर भेद हुये भेद का साधक भेद की अनवस्था होने से। और अभेद में विशिष्ट स्वरूप की असिद्धि है। वा विशिष्ट हुये भी प्रत्यक्षादि का विषय नहीं है। तिसको भीनिर्धर्मक होने से। जैसे रूपादि विशिष्ट में रूपादि का अभाव है। इन हेतुयों से वस्तु स्वरूप भेद का शंकामिथ्या है। वस्तु स्वरूप भेद वस्तु स्वरूप का विदारण नहीं करता है। जैसे पट का नाशक पट का स्वरूप नहीं है। और वस्तु स्वरूप से भिन्न निःस्वरूप निराश्रय स्वरूप भेद असिद्ध है। अन्यथा नष्ट घट भीजल का आधार हुआ चाहिये। और अभिन्न में आश्रय

और भेद का विरोध है। इन हेतुओं से सर्वथा प्रत्यक्षादिक प्रमाण आत्म अनात्म के भेद ग्राही असीद्ध हैं ॥ ३७॥

और जो कहा कि जगत् का कारण विषयणी श्रुतियों का अज्ञान और ब्रह्म विषय होने से परस्पर विरोधी हैं। इस हेतु से कारणत्व मिथ्या है सो ससिन्धिन नहीं है क्योंकि अगले श्लोक से व्याख्यान करते हैं ——

सि—ब्रह्माज्ञानाज्जगज्जन्म ब्रह्मणोऽकारणत्वतः ।
अधिष्ठानत्वमात्रेणकारणं ब्रह्म गीयते ॥३८॥

॥ पदच्छेद ॥

ब्रह्म-अज्ञानात्-जगत्-जन्म-ब्रह्मणः-अकारणत्वतः ।
अधिष्ठानत्व—मात्रेण—कारणं-ब्रह्म—गीयते ॥

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

ब्रह्म	—	ब्रह्म के	अधिष्ठानत्व	—	अधिष्ठानता
अज्ञानात्	—	अज्ञान से	मात्रेण	—	मात्र करके
जगत्	—	जगत् की	ब्रह्म	—	ब्रह्म को।
जन्म	—	उत्पति है	कारणं	—	कारणता
ब्रह्मणः	—	ब्रह्म	गीयते	—	कथन है
अकारणत्वतः	—	अकारण होने से	—	—	—

॥ भावार्थ ।

हे न्यायीक ब्रह्म के अज्ञान से जगत् का जन्म है और ब्रह्म अकारण होने से कारण कार्य से विलक्षण है। परन्तु अधिष्ठानता मात्र करके श्रुति ब्रह्मको कारण कथन किया है ॥ विकल्प—दृश्यत्वादि विकार युक्त प्रपंच को होने से अनुमान सिद्ध अनिर्वचनीय जगत् का कारण अनिर्वचनीय अविद्या ही है। ब्रह्म नहीं तिस ब्रह्मको कारण कार्य से विलक्षण होने से "तदेतब्रह्मापुर्वमनन्तरमवाह्यं अयमात्मा ब्रह्म सर्वानुभूः" मंत्र भाग करके ब्राह्मण भाग करके यह ब्रह्म अपुर्व अनन्तर अवाह्य है यह आत्मा ब्रह्म सर्व का अनुभवीता है ॥ यह श्रुति प्रमाण है ॥

शं—तब श्रुति ब्रह्म को जगत् का कारण क्यों कथन किय है ॥

सि—जगत् और जगत् का कारण अज्ञान के अधिष्ठानता रूप से ब्रह्म को कारणता श्रुति प्रतिपादन किया है। और ब्रह्म को कारणता कथन करने वाली श्रुति का अन्य अर्थ होन से "एकमेवाद्वितीयं" एक अद्वितीय ही है।। इस श्रुति से अद्वितीय ब्रह्म सिद्ध है ॥

शं—तब ब्रह्म को अकारण हुये कारण कार्य का अभेद कैसे संभव है।

सि—रज्जु सर्पादिवत् ब्रह्म भी जगत् का कारण होने से कैसे असंभावना है। तिस श्रुति का अद्वितीय में ही संभावाना वुद्धि मात्र का प्रयोजन है॥

शं—ब्रह्म के कारणत्व में वेदांत के एक देश अज्ञान कारणत्व पक्ष से अपसिद्धांत होगा॥

सि—न—अज्ञान भी जगत् का कारण श्रुति कथन किया है। तिस अज्ञान को भ्रम निम्नित मात्र कारणत्व कहा है। कार्य कारण वाद वेदांत से बहिर्भूत होने से और विवर्त वेदांत का वाद होने से। जगत् के कारणत्व प्रश्न का प्रतिवाद निवृति मात्र प्रयोजन करके अज्ञान को कारणत्व कथन है॥

शं—यह अज्ञान कार्य है वा अकार्य है। आदि पक्ष में अज्ञान का कारण अज्ञान है वा ब्रह्म है। आदि पक्ष असिद्ध है अज्ञान की उत्पति अज्ञान से हुए आत्माश्रय दोष होने से। और अन्य अज्ञान से उत्पति में अनवस्था दोष है॥ द्वितीय पक्ष भी असिद्ध है ब्रह्म को अकारण होने से। और अनिर्मोक्ष प्रसंग होने से और द्वितीय अकार्य पक्ष में अनादि भावरूप अज्ञान की निवृति न होगी। ब्रह्म के सदृश्य अनिवृत ही होगा॥

सि—न ब्रह्म और अज्ञान में समता नहीं है अज्ञान कल्पित होने से॥

शं—कल्पना की सामग्रि अभाव होने से अज्ञान अकल्पित है॥

सि—यह अज्ञान अनादि अध्यास है॥

शं—अध्यासत्व अज्ञान में असिद्ध है॥

सि—विद्या से वाध होने से अध्यासत्व की सिद्धि है॥

शं—विद्या से वाध अविद्या और अविद्या से वाध विद्या हुये में अन्योन्याश्रय दोष होगा॥

सि—यह दोष नहीं है। अवस्तु वस्तु का नाशक न होने से। कल्पित—अज्ञान कैसे वाध कर शका है। स्वयं अवस्तु होने से॥

शं—यह उक्त अलंकार हमी को सुगम है। यदि युक्ति प्रमाण के द्वारा (दुर्घटत्व है और सुघटत्व में कल्पित्व दुर्घटत्व है) फिर यहां प्रयंत भी कल्पितत्व की असिद्धि है। कल्पित धर्म का धर्मी अज्ञान को असिद्ध होने से॥

सि—फिर क्या सिद्ध है उत्पति है वाज्ञप्ति है। आदि पक्ष असिद्ध है। अनादि अभाव आपको इष्ट होने से। और द्वितीय पक्ष में साक्षि से सिद्ध अज्ञान का अभाव होने से द्वितीय पक्ष असिद्ध है॥

शं—मत ऐसा कहिये अज्ञान को साक्षि से सिद्ध हुये साक्षि के असंगता का भंग होगा। क्योंकि साक्षि साक्ष्य संबंध विना साक्षि में प्रकाशता का असम्भव है॥

सि—परमार्थिक संबंध अभाव भी है परन्तु कल्पित संबंध सिद्ध है॥

शं—संबंध संबंधी भिन्न भिन्न हुये आत्माश्रयादि दोष और कूटस्थता असंगता आदि की हानि मोक्ष अभाव का प्रसंग यथा योग्य दोष प्राप्त होगा॥

सि—अविद्या अध्यास के सम अविद्या का संबंध अध्यासित भी अनादि अविद्या से अजन्य अविद्या के आधीन रहे। और अविद्या के निवृत्ति हुये निवृत हो॥

शं—संबंध अनादि उत्पति रहित साक्षि के अधीन ज्ञान का विषय अज्ञान का अनपेक्षित होने से अज्ञान अधीनता का अभाव है॥

सि—संबंधी के ज्ञान के अधीन संबंध का ज्ञान लोक में दृश्य है॥

शं—लोक संबंध प्रत्याक्षादि प्रमाणों से सिद्ध संबंधीं का अपेक्षित है भी परंतु यह संबंधी अज्ञान साक्षि के संबंध का अपेक्षित है। अन्यथा स्फुर्तिकत्व साक्षि में विपरीत होगी॥

सि—संबंध अपने स्थिति के अर्थ सबंधी का अपेक्षा नहीं करता है॥

शं—न-सत्ता स्फुर्ति का लाभ ही साक्षि से प्राप्त संबंध की स्थिति का अपेक्षा है। हेतु अनंतर अनपेक्षा ही अन्य की अनपेक्षा स्थिति होने से। और अज्ञान का ग्रहण ज्ञान का प्राग भाव रूप अनुपलंभ ग्रहण कर्ता आत्मा से उपलंभ है॥

सि—नित्य उपलंभ रूप आत्मा की अनुपलब्धि असंभव है। और भाव रूप जगत् का उपादान अज्ञान का अभाव रूपत्व असिद्ध है। क्योंकि अज्ञान को अभाव रूप हुये जगत् का कारणत्व असिद्ध होगा॥

शं—अज्ञान का कारणत्वपना विरुध है अज्ञान का अभाव होने से। इस न्यायीक के कथन में सिद्धांती श्लोक से कहते हैं—

सि—प्रश्नस्य ज्ञान पूर्वकत्वादाक्षेपे प्रतियोगि धीः।
अवश्यं भाविनी पूर्वा विरोधःस्यादितोन्यथा॥३६॥

॥ पदच्छेद ॥

प्रश्नस्च-ज्ञान-पूर्वक-त्वात्-आक्षेपे-प्रतियोगि-धीः ।
अवश्यं-भाविनी-पूर्वा-विरोधः-स्यात्-इतः-अन्यथा ॥

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

प्रश्नस्य	— प्रश्न को	अवश्यं	— अवश्य
ज्ञान	— ज्ञान	पुर्वा	— पुर्व
पूर्वक	— पूर्वक	भाविनी	— भाववाली बुद्धि है
त्वात्	— होने से	इतः	— इससे
आक्षेपे	— आक्षेप में	अन्यथा	— अन्य
प्रतियोगि	— प्रतियोगि	विरोधः	— विरुध
धीः	— ज्ञान सिद्ध है	स्यात्	— है

॥ भावार्थ ॥

हे न्यायीक प्रश्न को ज्ञान पूर्वक होने से आक्षेप (अभाव) में प्रतियोगी ज्ञान कारण है। अवश्य पुर्वभाव के ज्ञान हुये बिना अभाव का ज्ञान नहीं हो शक्ता है। इससे अन्यथा विरोध है ॥ विकल्प अज्ञान अंगिकारी के प्रति यदि पुर्व पक्षी यह पूछे कि अज्ञान की सिद्धि कैसे है। तो पुर्व पक्षी से सिद्धांती को पूछने योग्य है। कि यह अज्ञान के स्वरूप का विषयी प्रश्न है वा अज्ञान के स्वरूप के आक्षेप (अभाव) में यह प्रश्न है वा अज्ञान के स्वरूप के साधक प्रमाण में प्रश्न हैं। आदि पक्ष में अज्ञात स्वरूप में प्रश्न का अभाव है। क्योंकि प्रश्न से पुर्व अज्ञान के स्वरूप का ज्ञान हुए बिना अज्ञान के अभाव का प्रश्न असंभव है। इस हेतु से अज्ञान का स्वरूप अवश्य प्रश्न से पुर्व सिद्ध है। आपके वाक्य से ही अज्ञान की सिद्धि होती है। फिर इसमें क्या प्रश्न है। और उक्त दोष से सामान ज्ञान से विशेष ज्ञान की जिज्ञासा भी अयुक्त है। और आक्षेप (अज्ञान का तिरस्कार) भी अयुक्तहै। अभाव ज्ञान को प्रतियोगी ज्ञान पूर्वक अर्थात् भाव ज्ञान के पूर्वक अभाव ज्ञान होने का नियम होने से। इस हेतु से अज्ञान का स्वरूप सिद्ध पूर्व ही कह आये हैं। अर्थात् जैसे घट के स्यरूप के ज्ञान बिना घट के स्वरूप के अभाव का ज्ञान होना असंभव है। और चक्षु आदि प्रमाण से सिद्ध घट के स्वरूप का तिरस्कार रुप आक्षेप करना अशक्य है तैसे साक्षि से सिद्ध अज्ञान के स्वरूप का तिरस्कार रूप आक्षेप करना अशक्य है। तैसे तृतीय पक्ष प्रमाण प्रश्न भी असिद्ध है अज्ञान को साक्षि से सिद्ध होने से ॥

शं— अज्ञात रूप अज्ञान का स्वरूप साक्षि से सिद्ध है तिस अज्ञान का आवरक अज्ञान के निवृति अर्थ में प्रमाण का प्रश्न युक्त है

सि— आपका कथन असंभव है अज्ञान को प्रमाण का अविषय होने से। और प्रमाण अज्ञान का विरोधी होने से तम दीप के सम॥ तथा अज्ञान को प्रमाण से जानने की इच्छा जो करते हैं वे मूढ बुद्धि है॥

शं— फिर अज्ञान क्या है॥

सि— आत्मा का अज्ञान है (मैं अपने को नहीं जानता) इस अनुभव से सिद्धअज्ञान का अभाव कैसे हो शक्ता है॥

शं— कर्तृत्व आदि समस्त अनर्थ का विज अज्ञान स्व अनुभव सिद्ध होने से (मैं मुक्त हूं) यह व्यवहार कैसे होगा॥

सि— "तत्वमसि" आदि वाक्य जन्यअपरोक्ष ब्रह्म आत्मा को साक्षात्कार करके अज्ञान का वाध होने से यह व्यवहार सिद्ध है॥ ३९॥

शं— यह वाध क्या है॥

सि— कार्य के साथ अज्ञान की निवृति वाध है॥

शं— वह निवृति कैसी है। इस प्रश्न के हुये श्लोक से व्याख्यान करते हैं—

सि-साक्षात्कृतेत्वधिष्ठाने समनंतर निश्चितिः।
अध्यस्य मानं नास्तीति वाध इत्युच्यतेबुद्धैः॥४०॥

॥ पदच्छेद॥

साक्षात्--कृते-तु-अधिष्ठाने-समनंतर-निश्चितिः।
अध्यस्य-मानं-नास्ति-इति-वाधं इति--उच्यते-बुद्धैः॥

॥ अन्वयशब्दार्थ॥

अधिष्ठाने — अधिष्ठान में		नास्ति — नहीं है	
साक्षात् — प्रत्यक्ष ज्ञान		इति — ऐसी	
कृते — करीके		निश्चितः — निश्चयता को	
समनंतर — तिसके अनंतर		बुद्धैः — बुद्धिमानों करके	
तु — विलक्षण		वाध — वाध (निवृत्ति)	
अध्यस्य — अध्यास		इति — ऐसा	
मानं — मान जगत्		उच्यते — कथन है	

॥ भावार्थ॥

हे वादी जब शुद्धअधिष्ठान में अधिष्ठान विषयक भ्रम वाधक ज्ञान करके अधिष्ठान का साक्षात्कार करीके तिसके अनन्तर यह विल

क्षण अध्यस्तमान जगत् तीनों काल में नहीं है । ऐसी निश्चयता बुद्धि सोई वाध है ऐसा बुद्धिमानों ने कथन किया है ॥ सो यह सर्व को अनुभव है ॥ अर्थात्—ब्रह्मात्मा अधिष्ठान के साक्षात्कार हुये अज्ञान और अज्ञान का कार्य समस्त भ्रम प्रपंच अध्यस्त तीनों काल में भी अधिष्ठान में नहीं है । इसी को वाध (निवृति) कहा है। इस हेतु से उत्पन्न उपाधि के निषेध का प्रतियोगि अनिर्वचनीय अज्ञान है । ऐसा विद्वानो के संप्रदाय उक्त लक्षण भी है ॥

शं—अधिष्ठान के ज्ञान के उत्तर काल में निषेध की प्रतियोगि भी हैं परन्तु वर्तमान अतीत दो काल में विद्यमान है ॥

सि—न (त्रैकालिक निषेध प्रतियोगित्वं अनिर्वचनीयत्वं) तीनों काल के निषेध के प्रतियोगि को अनिर्वचनीय कहा है ॥

शं—सर्व कार्य कारण के वाधरूप (नास्ति) ऐसे प्रत्यय के अन्तर भाव को वाध कहा है ॥ इससे अन्यथा अद्वैत की हानि होगी ॥

सि—न—ब्रह्म से भिन्न सर्व वाध रूप को (नास्ति) के अन्तर भाव करके वाध (नास्ति) रूप ही है ॥ और ब्रह्म से भिन्न है वा नहीं है । इस विकल्प का अवकाश नहीं है अनिर्वचनीयत्व कथन होने से । इन हतुयों से अधिष्ठान के ज्ञान के उत्तर अध्यस्त का वाध त्रैकालिक असत्यता की निश्चय ही वाध सिद्ध है । सो सुरेश्वराचार्य ने कहा है । श्लोक—

तत्वमस्यादिवाक्योत्थसम्यग्धीःजन्ममात्रतः ।
अविद्यासहकार्येणनासीदस्तिभविष्यति ॥१॥

अर्थ—"तत्व मसि" आदि वाक्यों से उत्पन्न सम्यक् ज्ञान के जन्म मात्र से । अविद्या सहित अविद्या के कार्य तीनों काल में असत्य हो जाता है। इसी प्रतीति को वाध कहा है । अविद्या की निवृति को वाध नहीं कहते हैं ॥ ४० ॥

वादी—कैसी विद्या करके अविद्या का वाध है ॥

सि—विरोध होने से ॥

वादी—कैसा दोनों का विरोध है ॥

सि—विशेष विकल्प की अपेक्षा त्याग करके अब सिद्धांत श्रवण कीजिये श्लोकः—

सि--उपमर्द्यस्वभावत्वमविद्यायाविरोधिता ।
तत्कर्तृत्वं तु विद्यायाः प्रकाशतमसोरिव ॥४१॥

॥ पदच्छेद ।

उपमर्द्य-स्वभावत्वं-अविद्याया-विरोधिता ।
तत्-कर्त्तृत्वं-तु-विद्यायाः-प्रकाश-तमसः-इवि ॥

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

अविद्याया	—	अविद्या करके और	कर्तृत्वं	—	कर्ता
विद्यायाः	—	विद्या करके	तु	—	विलक्षण विद्या है
उपमर्द्य	—	उपमर्द उपमर्दक	प्रकाश	—	प्रकाश
स्वभावत्वं	—	स्वभाव का	तमसः	—	अन्धकार के.
विरोधिता	—	विरोध है	इव	—	सम
तत्	—	तिस उपमर्द का	—	—	—

॥ भावर्थ ॥

अविद्याकरके और विद्या करके उपमर्द उपमर्दक स्वभाव का विरोध है है। तिस उपमर्द का कर्ता अविद्या से विलक्षण विद्या है प्रकाश अन्धकार के सदृश्य॥ अर्थात् अविद्या उपमर्द स्वभाव वाली है और विद्या उपमर्दक स्वभाव वाली है। तिस उपमर्दक स्वभाव का कर्ता विद्या है। सो लोक में प्रसिद्ध शुक्तिरज्जु का ज्ञान शुक्तिरज्जु के अज्ञान और अज्ञान का कार्य रजतसर्पादिकों का उपमर्दक है ॥

शं—विद्या में उपमर्दक स्वभावत्वविरोध है। फिर उपमर्दक स्वभाव अविद्या ही में क्यों न हो ॥

सि—ऐसे कहोगे तो विद्या की उत्पतिहीन होगी । क्योंकि उपमर्दक स्वभाव वालो अविद्या विद्या से पूर्व ही स्थित होने से । आर प्रतिनियत स्वभाव का त्याग अशक्य होने से। जैसे प्रकाश और अन्धकार का विपरित होना असंभव है। प्रत्यक्ष विरोध होने से ॥

शं—विद्या कर के अविद्या का उपमर्द हुए विद्या उत्पति के अनन्तर अविद्या और अविद्या का कार्य निवृत होने से विद्वानों को विदेह केवल मुक्ति के प्राप्ति में विद्या सम काल ही देह पात होना चाहिये। फिर विद्वानों के संप्रदाय की उच्छिन्नता होगी ॥

सि—प्रारब्ध के सामर्थ से देह पात नहीं होती है ॥

शं—प्रारब्ध भी अविद्या का कार्य होने से अविद्या के अभाव हुये स्थिति नहीं रह शक्ती है। जैसे तंतु के अभाव से पट का अभाव है ॥

सि—प्रारब्ध कर्म फल का निर्वाहक होने से प्रारब्ध प्रयंत अविद्या भी वर्तित है ॥

शं— फर विद्या में अविद्या के उप मर्दक स्वभाव की हानि होगी ॥

सि—प्रारब्ध कर्म के निवृति के उत्तर काल में वह स्वभाव है ॥

शं—एक में दो स्वभाव अस्वीकार है

सि—आवरण शक्ति प्रधान अज्ञान की निवृति विद्यासम काल है। और विक्षेप शक्ति प्रधान अज्ञान प्रारब्ध भोग के निमित वर्तता है।

शं—दो अज्ञान का अभाव है ॥

सि—एक ही अज्ञान दो शक्ति विशिष्ट है ॥

शं—एक को एक साथ स्थिति निवृति विरोध है ॥

सि—शक्ति मात्र की निवृति कथन है ॥

शं—शक्ति शक्तिवान का अभेद है। भेद होने से निवृति अज्ञान की न होगी ॥

सि—प्रारब्ध के निवृति से उसकी निवृति है ॥

शं—प्रारब्ध की निवृति अज्ञान का निवर्तक नहीं है। ज्ञान के विना ॥

सि—प्रारब्ध निवृति के अनन्तर ज्ञान अप्रति वध हुआ अज्ञान का निवर्तक है ॥

शं—प्रारब्ध के नाश से देह के पात के अनन्तर ज्ञान का ही अभाव है। और पूर्व का ज्ञान प्रारब्ध से बद्ध होने से अज्ञान की निवृति किया था नहीं। फिर विक्षेप शक्ति प्रधान अज्ञान का लेश ज्ञान से अनिवृत हुआ वर्तित होने से मूल अज्ञान नाश हुए भी अज्ञान का लेश विद्यमान हुए पुनः शरीरादि प्रपंच उत्पन्न होंगे ॥

सि—न-लेश भी अविद्या का कार्य होने से अविद्या के साथ निवृत है। और अविद्या में लेश रूप शब्द का प्रयोग व्यर्थ है। अविद्या में लेश रूप अंश का भेद अभेद अनिरूपण होने से। जीवन मुक्ति प्रतिपादक श्रुति स्मृति प्रमाणों से विद्वानों के देह की स्थिति कल्पना किया है ॥

शं—शास्त्र का जीवन मुक्ति प्रतिपादन में प्रयोजन अभाव है। मुमुक्षुओं का श्रवणादि में प्रवृति का प्रयोजन है ॥

सि—वह शास्त्र की श्रवणादि विधि अर्थ वाद ही रहे ॥

शं—फिर वैदिक प्रमाण अर्थ वाद होने से "भिद्यते हृदय ग्रन्थि छिद्यंते सर्व संशयाः" हृदय की ग्रन्थि नष्ट हो जाती है और सर्व संशय छिन्न हो जाती है। इस श्रुति से और लौकिक प्रमाण में शुक्ति के अज्ञान नाश हुये रजत का अभाव दृष्ट है। इन प्रमाणों से विरोध जीवन मुक्ति के निमित विद्वानों के देह की स्थिति क्यों कल्पते हो॥

सि—जैसे मुक्तों में प्रारब्ध वेग प्रारब्ध भोग के क्षय से क्षय अन्यथा नहीं। तैसे प्रारब्ध कर्म के भोग लक्षण कार्य के नाश से देह नाश है अन्यथा नहीं ऐसा शास्त्रकारों ने साधा है। इस दृष्टान्त से प्रारब्ध की स्थिति मैं भी साधता हूं॥

शं—दृष्टांत विषम्य है। तिस दृष्टांत में कर्म का उपादान ही नाश है। कर्म नहीं नाश है। और द्राष्टांत में कर्म भी निवृत है॥

सि—जीवन मुक्त सर्व लौकिक प्रमाणों से सिद्ध है॥

शं—प्रमाण बिना अन्ध परंपरा से सिद्ध है॥

सि—अप्रमाणिक को शास्त्रकारों का प्रतिपादन अनर्थ है॥

शं—शिष्य को अविद्वान होने से गुरु में विश्वास कराने के निमित्त से प्रतिपादन किये हैं। इस हेतु से विद्या से अविद्या का उपमर्द हुये विद्वानों की समकाल मुक्ति है॥

सि—समकाल मुक्ति मुझे इष्ट है॥

शं—तब उपदेष्टा के अभाव हुये विद्या की उत्पत्ति कैसे होगी॥

सि—आचार्य निर्पेक्ष उपदेष्टा हैं "आचार्यवान्पुरुषो वेद" आचार्यवान पुरुष जानते हैं॥ "नैषतर्केण मतिरापनेया" यह तर्कित बुद्धि करके नहीं प्राप्त होता है॥ "प्राप्य वरान्नि बोधत" श्रेष्ठों को प्राप्त होकर जानो॥ "आचार्यस्ते गतिर्वक्ता" आचार्य की तिनमें कथन की गति है॥ "अनेनैव सुज्ञानाय प्रेष्टः" अन्य करके ज्ञान के निमित्त प्रश्न करो॥ इत्यादि श्रुतियों करके यह दोष नहीं है। शिष्य के अज्ञान करके कल्पित उपदेष्टा सत्य होने से॥ उपदेष्टा की स्थिति हुये विद्या की उत्पति संभव है॥ ४१॥

शं—कल्पित मिथ्या भूत गुरु कैसे उपदेष्टा होगा "तत्व" में अर्थ क्रिया का कर्ता होने से कल्पितत्व गुरु में असिद्ध है। इस शंका के हुये श्लोक से व्याख्यान करते हैं—

सि—कल्पितोप्युपदेष्टास्याद्यथा शास्त्रं समादिशेत्।
नचाविनिगमोदोषोविद्यावत्वेननिर्णयात्॥४२॥

॥ पदच्छेद ॥

कल्पितः-अपि-उपदेष्टा-स्यात्-यथा-शास्त्रं-समादिशेत् । न-च-अविनिगमः-दोषः-अविद्यावत्वे-न-निर्णयात्॥

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

कल्पितः	— कल्पित	अविनिगमः	— विनिगमन
अपि	— भी	दोषः	— दोष
उपदेष्ट	— गुरु	न	— नहीं है
स्यात्	— हो शक्ता है	च	— अव्ययार्थ
यथा	— जैसे	अविद्यावत्वे	— अविद्यावान गुरु से
शास्त्रं	— कल्पित शास्त्र	निर्णयात्	— निर्णय के
समादिशेत्	— उपदेश करता है	न	— न होने से

॥ भावार्थ ॥

यद्यपि कर विद्वानों की ज्ञान समकाल मुक्ति है । परमार्थ से कोई उपदेष्टा नहीं है । तथापि कल्पित गुरु करके विद्या का उपदेश हो शक्ता है ॥

शं—कल्पित गुरु कैसे सत्य ज्ञान का जनक होगा ॥

सि—जैसे कल्पित शास्त्र अपने अर्थ का उपदेश करता है । जैसे कल्पित प्रतिविंब बिंब के सम स्थित है । तैसे कल्पित गुरु सत्यवत् हैं ॥

शं—गुरु शिष्य के मध्य कौन कल्पक है । गुरु से कल्पित शिष्य ही क्यों न हो ॥

सि--न-यह विनिगमनः का अभाव है गुरु अविद्यावानसे "तत्व" कानिर्णय न होनेसे । अज्ञानी शिष्य कल्पक से गुरु कल्पित है । और गुरुकेप्रति कल्पना का बीज अविद्या का अभाव होनेसे गुरुकल्पक नहीं है । और जिस हेतु से गुरु कल्पक नहीं हैं । तिस हेतु से शास्त्र आचार्य के प्रसाद से सादित् शिष्य "तत्वमसि" आदि वाक्यों से उत्पन्न ब्रह्मात्मा के साक्षात्कार से मोक्ष का आविर्भाव और प्रतिबंध अज्ञान और अज्ञान के कार्य क. तिरस्कार के अनंतर नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव अद्वितिय आनन्द रूप में हूं ऐसा मानता है । पश्चात्कृतकृत्य होता है । इस हेतु से (आत्मानन्द साक्षात् विनिश्चितम्) यह प्रथम श्लोक साधु उक्त है ॥ पुनः "विज्ञानमानन्दं ब्रह्म" विज्ञान आनन्द ब्रह्म है ॥ "आकाश आनन्दे न स्यात्सैषा आनन्दस्य मीमांसा" आकाश आनन्द नहीं है सो इस आनन्द का विचार कर्तव्य है ॥ यहां से आरम्भ करके "यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एकः" जो इस पुरुष में है और जो उस आदित्य में है सो एक है ॥ यहां पर्यंत और 'भृगुर्वै वारुणि' भृगु वरुणि से कहा है ॥ यहां से आरम्भ

करके "आनन्दो ब्रह्म इति वैजानात्" आनन्द ब्रह्म ऐसा जाना जाता है॥ अंत में "योवै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुख" जो बहुत से रहित एक है वही सुख है और अल्प जगत् में सुख नहीं है। इत्यादि श्रुतियों से। और "न वा अरे पत्यु: कामाय पतिः प्रियो भवति आत्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति" अरे मैत्रयी पति के कामना करके स्त्री को पतिप्रिय नहीं है किंतु अपने आत्मा के कामना करके पतिप्रिय है॥ यहां से आरम्भ करके "नवा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवति आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति" सर्व के कामना करके सर्व प्रिय नहीं हैं किंतु आत्मा के कामना करके सर्व प्रिय हैं॥ इस अंत के प्रति पादन से आत्मा ही परमानन्द रूप है॥

शं—आत्मा में आनन्दत्व आदि धर्म आत्मा में है वा नहीं आत्मा में कहो तो सत्य है वा असत्य है। सत्य कहो तो द्वैतसिद्ध होगा। असत्य कहो तो आत्मा धर्मी आनन्द रहित होगा॥

सि—आनानन्दता नहीं है आनन्द को आत्मा से अभिन्न होने से॥

शं—तथापि आनन्दरूपता असिद्ध है। और द्वितीय पक्ष भी असिद्ध है आनन्द को अनाश्रय हुये आनन्द का व्यवहार अदर्शन होने से॥

सि—सर्व व्यवहार से अतीत अलौकिक यह आत्मानन्द है। लौकिक वैदिक आनन्द को एक होने से अतीत अनतीत पदार्थों के विशेषता का दोष नहीं है। लोक वेद के आनन्द का एक अधिकरण आत्मा होने से। श्रुति और अनुभव से किसी को लौकिक सुख में कामना नहीं होती है। और स्वर्गादिकों का सुख भी लौकिक सुख के सजातीय होने से स्वर्गादि सुख की भी कामना नहीं है॥ और कोई ऐसे मानने हैं कि आनन्दत्व ज्ञानत्व आदि धर्म जिसमें कल्पित हैं वही आनन्दत्व आदि पद का अर्थ है। जैसे लोक प्रसिद्ध विषय में कल्पित आनन्दत्व पद का अर्थ विषय है। इस कथन से भी आनन्द की कोई हानि नहीं है। धर्म को अपुरुषार्थत्व सिद्ध होने से। तिस धर्म का आश्रय व्यक्ति ही अभिलाषा की विषय है॥ ॥ ४२॥

शं—आनन्दत्व आनन्द शब्द के प्रवृति में उपलक्षण है वा विशेषण है। अनन्त शक्ति का प्रसंग और व्यक्ति के विशेष अप्रतीति का प्रसंग होने से आदि पक्ष असिद्ध है। और द्वितीय पक्ष में विशिष्ट विशेषण से भिन्न है वा अभिन्न है। आदि पक्ष में ही विशिष्ट आनन्दत्व पद का अर्थ होने से अखंड अर्थ व्यक्ति मात्र में असिद्ध है। विशेषण से विशिष्ट अभिन्न कहो तो कल्पित आनन्दत्व का आश्रय को अनानन्दत्व का प्रसंग निवृत न होगा। क्योंकि जो धर्म जिसमें स्वभाविक नहीं है उस धर्म का अर्थ तिसके अंतरभाव संभव नहीं है। अन्यथा शुक्ति रज्जु भी रजत सर्प पदों का अर्थ होना चाहिते। इस शंका के हुये श्लोक से कहते हैं—

सि-उपाधिसंश्रयोह्यात्मा आनन्दत्वंतदाश्रयः ।
विशिष्टशक्तिपक्षेतुव्यक्तिर्वा शक्ति गोचरः ॥४३॥

॥ पदच्छेद ॥

उपाधि-संश्रयः-हि-आत्मा-आनन्दत्वं-तत्-आश्रयः ।
विशिष्ट-शक्ति-पक्षे-तु-व्यक्तिः-वा-शक्ति गोचरः ॥

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

उपाधि	—	उपाधि के	व्यक्ति	—	व्यक्ति ही
संश्रयः	—	आश्रित	शक्ति	—	पदके शक्ति का
आत्मा	—	आत्मा	गोचरः	—	विषय है
हि	—	निश्चित	तु	—	विलक्षण
तत्	—	तिस आत्मा के	विशिष्ट	—	विशिष्ट
आश्रय	—	आश्रित	शक्ति	—	शक्य
आनन्दत्वं	—	आनन्दत्व धर्म है	पक्षे	—	पक्ष में
वा	—	अथवा	—	—	—

॥ भावार्थ ॥

यदि लोक में आनन्दत्व धर्म का विशिष्ट ही आनन्दपद का अर्थ है । तथापि आत्मा ही आनन्द पद का मुख्य अर्थ है । ॥ एक ही आत्मा नाना उपाधि के आश्रित हो करके अनुगत व्यावृति बुद्धि रूपी जनक करके जाति व्यक्ति उभय रूपता से भान होता है । जैसे सर्व कल्पना से रहित एक स्वरूप मुख चन्द्रादि कों में बिंबप्रतिबिंब स्वरुप त्रिविध व्यवहार उपाधि जल दर्पणादि के आश्रित हुये आरोपण के अनन्तर दृष्ट है । लक्षणास्थल में ऐसा उक्त है ॥ अथवा व्यक्ति ही सर्वत्र आनन्दत्वपद के शक्ति का विषय है । और व्यक्ति के अनन्तता से आनन्दत्व पद के शक्ति के संबंध का व्यभिचार दोष का प्रसंग भी नही है व्यक्ति आत्मा का रूप होने से । और आनन्दत्व विशिष्ट में आनन्दत्व पद को शक्ति है । इस पक्ष में भी पूर्व के तुल्य है । और आनन्दत्व विशेषण अभेद भी विशेष के भेदे से विशेष के प्रति विशिष्ट को भेद का दोष नहीं है । विशेषण के एकता से विशिष्ट एक होने से । तिस हेतुओं से अशक्य पद से भी शक्यता अवच्छेदक करके अनुगत शक्य व्यवहार और शक्य व्यावृति व्यवहार उभय उत्पन्न कर शक्ता है । अर्थात् आनन्दत्व रूपीशक्य से रहित आनन्द पदरूपी आत्मा गत आनन्दता से अवच्छेदक आनन्दत्व करके अनुगत आनन्दत्व व्यवहार और आनन्दत्व व्यावृति

व्यवहार उत्पन्न संभव है। तिस आनन्द आत्मा पद में शक्तिआनन्दत्व की कल्पना व्यर्थ है। कारण स्वरूप स वहिर्भूत कारणता अवच्छेदक कारणत्व जाती के सम मिथ्या कल्पना है ॥ ४३ ॥

जिस हेतु से आनन्द रूप आत्मा से भिन्न आनन्दत्व असिद्ध है। तिस हेतु से आनन्द रूप आत्मा शुद्ध तटस्थ रूप से प्रतीत है सो श्लोक से व्याख्यान करते हैं —

सि-आनन्द रूपमात्मानं सच्चिदद्वय तत्वकं।
अपूर्वादिप्रमाणोक्तं प्राप्यहंतद्वपुः स्थितः ॥४४॥

॥ पदच्छेद ॥

आनन्द-रूपम्-आत्मानं-सत्-चित्-अद्वय-तत्वकं। अपूर्व-आदि-प्रमाण-उक्तं-प्राप्य-अहं-तत्-वपुः-स्थितः ॥

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

आनन्द	— सुख	आदि	— आदि लिंगों के
रूपं	— रूप	प्रमाण	— प्रमाण से
आत्मानं	— आत्मा	उक्तं	— कथित् को
सत्	— सत्य	प्राप्य	— प्राप्त हो कर
चित्	— चैतन्य	तत्	— तिस आत्मानन्द
अद्वय	— अद्वितीय	वपुः	— व्यक्ति में
तत्वकं	— तत्व	अहं	— मैं
अपूर्व	— अपूर्वता	स्थितः	— स्थित हूं

॥ भावार्थ ॥

आनन्द रूप आत्मा सत्य चैतन्य अद्वितीय तत्व अपूर्वता १ उपक्रम उस संहार २ अभ्यास ३ फल ४ अर्थ वाद ५ उक्ति ६ षट लिंग प्रमाण से कथित का प्राप्त होकर तिस आत्मानन्द व्यक्ति में मैं स्थित हूं ॥ ४४ ॥

सत्य अन्यवादिकों को अद्वयत रूप होना असंभव है। इस शंका के प्राप्त हुये श्लोक से व्याख्यान करता हूं —

सि-योहमद्वय वस्तुएवसदव्ययदृढ़निश्चयः ॥
प्राप्यचानन्दमात्मानं सोहमद्वयविग्रहः ॥ ४५ ॥

॥ पदच्छेद ॥

यः-अहम्-अद्वय-वस्तु-एव-सत्-अव्यय-दृढ़-निश्चयः । प्राप्य-च-आनन्दं-आत्मानं-सः-अहम्-अद्वय-विग्रहः ॥

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

यः	— जो	च	— पुनः
अहम्	— हम्	आत्मानं	— आत्मा के
एव	— निश्चय	आनन्दं	— आनन्द को
सत्	— सत्य	प्राप्य	— प्राप्त हो कर
अव्यय	— अव्यक्त	सः	— सोई
अद्वय	— अद्वितीय	अद्वय	— अद्वितीय
वस्तु	— वस्तु	विग्रहः	— प्रपंच का लयस्थान
दृढ़	— दृढ़	अहम्	— मैं हूं
निश्चयः	— निश्चयकरथा	—	— —

॥ भावार्थ ॥

जो हम निश्चय सत्य अव्यक्त अद्वितीय वस्तु दृढ़ निश्चय कर था । अर्थात् सत्य रूप से अधिष्ठान था और अन्यत्र सर्व अज्ञान कल्पित होने से और तिस की प्रतीति भ्रमरूप होने से अद्वय आत्मक नहीं हैं प्रमाण विरुद्ध होने से । इस हेतु से मैं अव्यक्त दृढ़ निश्चयकर था पुनः आत्मा के आनन्द को प्राप्त होकरके सोई अद्वितीय प्रपंच का लय स्थान में हूं ॥ ४५ ॥

शं—ब्रह्म सत्य होने से अधिष्ठान है यह कथन असत्य है । ("नास्ति ब्रह्म") ब्रह्म नहीं है । इस प्रतीति से ब्रह्म असत्य है । इस शंका के हुये ("अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद ब्रह्मेव भवति") ब्रह्म है जो ऐसा जानते हैं वह ब्रह्म रूप हैं ॥ इत्यादि श्रुतियों से जन्य आत्म ज्ञान का विरोध होने से यह शंका असत्य है सो परिहार करते हैं :—

सि—नास्तिब्रह्मसदानन्दमितिमेदुर्मतिःस्थिता ।
क्वगतासानजानामियदाहंतद्वयुःस्थितः ॥४६॥

॥ पदच्छेद ॥

न-अस्ति-ब्रह्म-सत्-आनन्दं-इति-मे-दुर्मतिः—

स्थिता । क्व-गता-सा-न-जानामि-यदा-हं-तत्-वपुः-स्थितः ॥

सत्	— सत्य	हं	—	मैं
आनन्दं	— सुख रूप	तत्	—	तिस ब्रह्म के
ब्रह्म	— ब्रह्म	वपुः	—	व्यक्ति रूप
न	— नहीं	स्थित	—	स्थित हुआ । तब
अस्ति	— है	सा	—	वह दुर्बुद्धि
इति	— ऐसी	क्व	—	कहां
दुर्मतिः	— दुर्बुद्धि	गता	—	गई
मे	— मेरे में	न	—	नहीं
स्थिता	— स्थित थी	जानामि	—	जानता हूं
यदा	— जब	—	—	

॥ भावार्थ ॥

सत्य आनन्द ब्रह्म नही है ऐसी दुर्बुद्धि मेरे में स्थित थी। परन्तु जब मैं तिस ब्रह्म रूप व्यक्ति में स्थित हुआ तब वह दुर्बुद्धि कहां गई मैं यह नहीं जानता हूं ॥ ४६ ॥

शं- तथापि सत्य अव्यय आदि प्रपंच वाह्य प्रपंच के सम मिथ्या नहीं हैं इस शंका में दृष्टांत की असिद्धता देखाता हूं-

सि-पूर्णानन्दाद्वये तत्वेमेर्वादि जगदाकृत्तिः ।
बोधेअबोध कृतैवासीदवोधःक्वगतोधूना ॥४७॥

॥ पदच्छेद ॥

पूर्ण-आनन्द-अद्वये-तत्वे-मेर्व-आदि-जगत्-आकृतिः। बोधे-अवोध-कृत्-एव-आसीत् अवोधः - क्व -गतः-अधूना ॥

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

पूर्ण	— परिपूर्ण	कृत्	—	रचित
आनन्द	— सुख रूप	एव	—	ही

अद्वये	— अद्वितीय		आसीत्	— स्थित थी
सत्वे	— तत्व में		अधूना	— अब
मेर्व	— मरुथल जल		बोधे	— ज्ञान हुये
आदि	— रज्जुसर्पादि वत्		अबोधः	— अज्ञान
जगत्	— संसार प्रपंचकि		क्व	— कहां
आकृत्तिः	— आकृत्ति		गतः	— गया
अवोध	— अज्ञान			

॥ भावार्थ ।

पूर्ण आनन्द अद्वितीय तत्व ब्रह्मात्मा में मरुथल जल रज्जुसर्प गंधर्व नग्र शुक्ति रजत्-के सम यह जगत् प्रपंच की आकृति (व्यक्ति) अज्ञान रचित्-ही स्थित् थी ॥

शं—तब अज्ञान भी ब्रह्म के सम अव्यचित् होने से सत्य है। तिस अज्ञान मूलक जगत् भी मिथ्या नहीं है ॥

सि—न- ब्रह्मात्मा के एकता के साक्षात्कार रूप ज्ञान हुये वह अज्ञान अब कहां गया। सूर्य के उदय हुये तमवत् तथा अज्ञाम का बाध मिथ्या रूप है ॥४७॥

शं—ज्ञान अज्ञान का ही विरोध है सो अज्ञान शुद्ध आत्मा रूप अधिष्ठान का आवरक होने से अधिष्ठान के ज्ञान से अज्ञान की ही निवृति है। उपादेय (कार्य) की निवृति कैसे है॥ इस शंका के हुये कहता हूं कि उपादान के निवृत हुये उपादेय (संसार) की भी निवृत है। जैसे तंतु के नाश से पट का भी नाश दृष्ट है। इस अभिप्राय से कहता हूं—

सि-संसार रोग संग्रस्तो दुःख राशिरिवापरः।
आत्मबोध समुन्मेषादानन्दाब्धिरहोस्थितः ॥४८॥

॥ पदच्छेद ॥

संसार-रोग-संग्रस्तः-दुःख-राशिः-इव-अपरः।
आत्म-बोध-समुन्म-एषात्-आनन्द-अब्धिः-अहो-स्थितः ॥

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

संसार	— संसार रूपी	समुन्म	— सम्यक्
रोग	— रोग के	आत्म	— आत्मा के
अपर:	— अपार	बोध	— साक्षात्कार ज्ञान से
राशि:	— समुद्र के	अहो	— आश्चर्य है कि
इव	— सम	आनन्द	— सुख
दु:ख	— दु:ख से	अब्धि:	— सागर में
संग्रस्त:	— ग्रसित था	स्थित:	— स्थित हूं
एषात्	— इस	—	— —

॥ भावार्थ ॥

संसार रूपी रोग के अपार समुद्र के सम दु:ख से मैं ग्रसित था। परन्तु इस सम्यक् प्रकार के आत्म साक्षात्कार रूपी ज्ञान से आश्चर्यवत् सुखसागर में मैं स्थित हूं ॥ ४८ ॥

अब (आनन्द अब्धि) विशेषण का फल कहते हैं—

सि—योहमल्पेपि विषयेरागवानति विह्वलः।
आनन्दात्मनि संप्राप्तेसरागःक्वगतोधूना ॥४९॥

॥ पदच्छेद ।

यः—अहम्—अल्पे—अपि—विषये-रागवान्-अति-विह्वलः। आनन्द-आत्मनि-संप्राप्ते-स-रागः- क्व-गतः-अधूना ॥

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

यः	— जो	आत्मनि	— आत्मा के
अहम्	— हम्	आनन्द	— सुख
अल्पे	— थोड़ी	संप्राप्ते	— प्राप्त होने से
अपि	— भी	स	वह
विषये	— विषय में	राग:	— राग
रागवान्	— रागी हुआ	अधूना	· अब
अति	— अत्यंत	क्व	— कहाँ
विह्वलः	— आनन्दित होते थे	गतः	— गया

॥ भावार्थ ॥

जो हम थोड़ी भी विषय को प्राप्त हो कर रागवान हुआ अत्यन्त आनन्दित हो जाते थे। सो आत्मा के आनन्द प्राप्त हुये वह राग (प्रेम) अब कहां गया॥ अर्थात् रागही प्रवृति का मूल है सो निरतिशय सुख आत्मानन्द के अन्तर भाव

सर्व विषय सुख होने से आत्मानन्द के प्राप्त हुये। और आत्मानन्द ही सर्व सुख की प्राप्ति होने से विषय में राग का अभाव हुये विषय में प्रवृत्ति का अभाव है ॥ ४९ ॥

शं—अज्ञान आत्मानन्द का आवरक युक्त नहीं है—

सि—यस्य मे जगतांकर्त्तुः कार्यैरपहृतात्मनः।
आविर्भूत परानन्दमात्माप्राप्तःश्रुतेर्बलात् ॥५०॥

॥ पदच्छेद ॥

यस्य-मे-जगतां-कर्त्तुः-कार्यैः-अपहृत्-आत्मनः।
आविर्भूत-पर-आनन्दम्-आत्मा-प्राप्त-श्रुतेः-वलात्॥

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

यस्य	— जो	श्रुतेः	— श्रुतियोंके
मे	— मैं	बलात्	— बलसे
जगतां	— जगत् का	आविर्भूत	— आवरणरहित
कर्त्तुः	— अधिष्ठान	पर	— परम
आत्मनः	— आत्मा	आनन्दम्	— आनन्द
कार्यैः	— अज्ञान के कार्यकरके	आत्मा	— आत्मा को
अपहृत्	— आच्छादित था	प्राप्तः	— प्राप्त हूं

॥ भावार्थ ॥

जो मैं जगत् का अधिष्ठानरूप आत्मा अज्ञानके कार्य करके आच्छादित था। सो मैं श्रुतियों के बल से आवरण रहित परम आनन्द आत्मा को प्राप्त हूं ॥५०॥

शं—आत्मा अपरोक्ष तिस से अभिन्न ब्रह्म भी अपरोक्ष है। फिर आत्मा भान होने से। तथा ब्रह्म साक्षात्कार से संसार कैसे दृश्य है॥

सि—आत्म ज्ञान अहं कर्त्तादि रूप है वा शुद्ध स्वरूप साक्षात्कार है।

अहं कर्त्तादि को अनात्म ज्ञान होने से आदि पक्ष असिद्ध है। और विचार से पुर्व शुद्ध ज्ञान को अभाव होने से द्वितीय पक्ष भी असिद्ध है॥

सो श्लोक से व्याख्यान करता हूं—

सि—परामृष्टोसि लब्धोसि प्रोषितोसि चिरंमया।
इदानिंत्वामहं प्राप्तोनत्यजामि कदाचन ॥५१॥

॥ पदच्छेद ॥

परामृष्टः-असि-लब्धः-असि-प्रोषि-तः-असि-चिरंमया । इदानिं-त्वाम्-अहं-प्राप्तः-न-त्यजामि-कदाचन ॥

॥ अन्वयशब्दार्थं ॥

मया	— मुझकर के	असि	— था । परन्तु
प्रोषि	— प्रश्नित	इदानिं	— अब
तः	— तू	त्वाम्	— आपको
चिरं	— बहुत काल से	अहं	— मैं
असि	— था	प्रातः	— प्राप्त होकर
परामृष्टः	— परामर्षित् (अभ्यासित्)	कदाचन	— कदाचित्
असि	— था	न	— न
लधः	— प्राप्त	त्यजामि	— त्यगदूंगा

॥ भावार्थ ॥

मुझ करके प्रश्नित हे आत्मदेव तू बहुत काल से था और परामर्षित् (अभ्यासित्) भी तू था और प्राप्त भी तू था । परन्तु अब आपको मैं प्राप्त होकर कदाचित् (किसी काल) में त्याग न करूंगा अर्थात् फिर अभित् न होऊंगा ॥ ५१ ॥

शं—त्यागने से क्या दोष है । कहता हूं—

सि- त्वांविना निःस्वरूपोऽमांविनात्वंकथंस्थितः ।
इष्ट्य दानींमयालब्धोयोसिसोसिनमोस्तुते ॥५२॥

॥ पदच्छेद ॥

त्वां - बिना- निः-स्वरूपः-अहं- मां - विना-त्वं-कथं-स्थितः इष्ट्य-इदानीं-मया-लब्धः - यः- असि-सः-असि-नमः-अस्तु-ते ॥

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

त्वां	—	आपके	मया	—	मुझ करके
विना	—	विना	दृष्ट	—	साक्षात्कार रूप से
अहं	—	मैं	लब्धः	—	प्राप्त हो
निः	—	निः	यः	—	जो
स्वरूपः	—	स्वरूप हूं	असि	—	हो
मां	—	मेरे	सः	—	सो
विना	—	विना	असि	—	हो
त्वं	—	आप	ते	—	आपको
कथं	—	कैसे	नमः	—	नमस्कार
स्थितः	—	स्थित रह शक्ते हैं	अस्तु	—	है
इदानीं	—	अब	—	—	—

॥ भावार्थ ॥

हे ब्रह्म आपके विना मैं निःस्वरूप हूं। अर्थात् ब्रह्म को सत्य रूप होने से तिस ब्रह्म से भिन्नता में असत्यता का प्रसंग होने से त्याग युक्त नहीं है। और हे ब्रह्म मेरे विना आप कैसे स्थित रह शक्ते हैं। अर्थात् ब्रह्म भी प्रत्येक् आत्म से अभिन्न होने से तिस आत्मा से भिन्न हुये जड़ता का प्रसंग होने से ब्रह्म आत्मा से भिन्न युक्त नहीं हैं। अब मुझ करके आप साक्षात्कार रूप से प्राप्त हैं वचन से आपको (त्वं (अहं) (यह) (वह) कुछ नहीं कह शका हूं वचनादिक का अविषय होने से। इस हेतु से आप जो हैं सो हैं बंधन निवृत्त के उपकारार्थ आपको नमस्कार है ॥५२॥

शं—साक्षात्कार होने पर क्या बंधन है।

सि—श्लोक से कहता हूं जो बंधन है—

सि—देहाभिमाननिगडैर्वद्धोऽबोधारण्य तस्करैः।
चिरंतेदर्शनादेवत्रुटितंबंधनंक्षणात् ॥५३॥

॥ पदच्छेद ॥

देह-अभिमान-निगडैः-वद्धः-अबोधाः-अरण्य-तस्करैः-
चिरं-ते-दर्शनात्-एव-त्रुटितं-बंधनं-क्षणात् ॥

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

देह	— शरीर के	बधः	— बधा हुआ
अभिमान	— अहंकार रूपी	ते	— आप के
निगडैः	— सांकडकरके	दर्शनात्	— दर्शन मात्र से
अबोधाः	— अज्ञान रूपी	एव	— ही
अव्य	— अव्यक्त	क्षणात्	— एक क्षण में
तस्करैः	— चोर करके	बंधनं	— बंधन
चिरं	— बहुत काल से	त्रुटितं	— टूट गया

॥ भावार्थ ॥

देह के अहंकार रूपी सांकड करके अज्ञान रूपी अव्यक्त चोर करके बहुत काल का मैं बधा हुआ आप के दर्शन मात्र से ही एक क्षण में बंधन टूट गया ॥ ५३ ॥

शं—बंध और मुक्त में क्या विशेषता है ॥

सि—कहता हूं —

सि-विशुद्धोस्मिविमुक्तोस्मिपूर्णात्पूर्णतमाकृतिः ।
असंस्पृश्यतमात्मानमन्तरब्रह्मांडकोटयः ॥५४॥

॥ पदच्छेद ॥

विशुद्धः—अस्मि—विमुक्तः—अस्मि-पूर्णात्-पूर्णतम्-आकृतिः । असंस्पृश्य - तम् - आत्मानम् — अन्तः - ब्रह्मांड-कोटयः ॥

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

विशुद्धः	— शुद्धो (शुद्ध)	तम्	— तिस मैं
अस्मि	— अहं (हूं)	आत्मानम्	— आत्मा को
विमुक्तः	— मुक्तो (मुक्त)	असंस्पृश्य	— न स्पर्श कर के
अस्मि	— अहं (हूं)	अन्तः	— अंतर (आत्मा) के
पूर्णात्	— पूर्ण से भी	ब्रह्मांड	— ब्रह्मांड को
पूर्णतम्	— पूर्ण	कोटयः	— कोटियां स्थित हैं
आकृतिः	— स्वरुप मैं हूं	—	— —

॥ भावार्थ ॥

बद्ध पुरुषों की मलीनता शोक युक्त लोक में प्रसिद्ध है। तथा न्युनता दीनतादि हाने से मुक्त पुरुषों में तिससे विपरीत लोक में प्रसिद्ध है। इस हेतु से शुद्ध मल रहित मैं हूं त्रिमुक्त मैं हूं। द्वितीय का अभाव होने से पूर्ण आकाश व्यापक से पूर्ण माया तिस माया व्यापक से भी पूर्ण त्रिविध परिच्छेद से शून्य मैं हूं। इस कथन से निरतीशय महत्व का स्पष्ट किया। फिर तिस मैं आत्मा, को न स्पर्श करके मेरे आत्मा के अनन्तर अनेक ब्रह्मांड की कोटियां स्थित हैं ॥ ५४ ॥

"तत्व" साक्षात्कार का साधन अन्तःकरण के शुद्धि का हेतु "वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन तपसा कर्मणा वा" ब्राह्मण वेद वचन करके यज्ञ करके तप करके कर्म करके आत्मा को साक्षात्कार करने की इच्छा करते हैं ॥ इत्यादि श्रुतियों के कार्य लिंग करके अनुष्ठित "तत्व" को कहता हूं—

त्वमसि–तत्त्वमस्यादिवचोजालमावृत्तमसकृत्पुरा ।
इदानींतत्श्रवादेव पूर्णानन्दोऽव्यवस्थितः ॥५५॥

॥ पदच्छेद ॥

तत्त्वमसि–आदि–वचः–जालम्-आवृत्तम्–असकृत्-पुरा। इदानीं–तत्–श्रवात्–एव-पूर्ण–आनन्दः-ऽव्यवस्थितः ॥

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

तत्वमसि	— तत्त्वमसि	इदानीं	— अब
आदि	— अहं ब्रह्मास्मि आदि	तत्	— तिस वेदांत के
वचः	— वाक्यों के	श्रवात्	— फल से
जालम्	— समूह का	एव	— ही
पुरा	— पूर्व काल में	पूर्ण	— परिपूर्ण
असकृत्	— पुनः पुनः	आनन्दः	— सुख रूप से
आवृत्तम्	— आवृति करते थे	व्यवस्थित.	— स्थित हूं

॥ भावार्थ ॥

"अहं ब्रह्मास्मि" आदि वाक्यों के समूह संपूर्ण वेद और उपलक्षण (षट्शास्त्र पूर्णादि) और अड़तालीस संस्कार नित्या नित्य, वस्तु का विवेकादि अष्ट अन्तरंग साधनों के संपन्न पूर्व में पुनः पुनः आवृत्ति (अभ्यास) करते थे। फिर वेदांत वाक्यों के विचार जन्य साक्षात्कार से युक्त है कर्म के साथ नहीं युक्त है। इस हेतु से संन्यास को भी अंगता दिखाने के अर्थ। तिस वेदांत के फल साक्षात्कार से परिपूर्ण आनन्द रूप में स्थित हूं। यह कहा है॥

शं—परिपूर्ण आनन्द सत्य चत् आत्मा संसार दशा में क्यों नहीं भान होता है ॥

सि—परम प्रेम का विषय होने से आनन्द स्वरूप का भान है ॥

शं—जैसी मोक्ष अवस्था में "आनन्दं ब्राह्मणोरूपं तच्च मोक्षे प्रतिष्ठं" आनन्द ब्रह्म का रूप सो मोक्ष में प्रतिष्ठित है ॥ ऐसी अभिमानता भान होती है। तैसी परमप्रेम क विषय होने हुये भी संसार दशा में भान नहीं होता है। इस हेतु से मोक्ष ही तिस आनन्द की व्यक्ति श्रुति से सिद्ध है ॥

सि—संसार दशा में आनन्द रूप भान भी है परन्तु प्रतिबंध के वश आनन्द रूप नहीं मानते हैं ॥

शं—वह प्रतिबंध क्या है अज्ञान है वा अज्ञान का कार्य है। यदि आदि पक्ष अज्ञान कहें तो जीव को प्रतिबंध है वा परमात्मा को है अंत पक्ष असिद्ध है परमात्मा सर्वज्ञ निर्बंध होने से। और आदि पक्ष भी असिद्ध है जीव परमात्मा से "तत्वमसि" आदि वाक्यों करके अभिन्न होने से

सि—कल्पना से जीव में अज्ञान है वास्तव से नहीं है ॥

शं—न-अभेद होने से परमात्मा में भी अज्ञान का प्रसंग होगा ॥

सि—चित्त मात्रनिष्ट अज्ञान है। तिससे सर्व आत्मानन्द प्रतिबंध हैं ॥

शं—यदि संसार दशा में अप्रतिबंध आत्मानन्द नहीं है। तब किसके प्राप्ति से बंध का निवृति होगा। संसारी के प्राप्ति से बंध संसार की निवृति तो संभव है नहीं ॥

सि—अप्रति बंध ही आनन्द संसार दशा में भी है केवल अज्ञान से उत्पन्न द्वैत के अन्तर भूत शब्दादि विषय चित्र विषयण के दर्शन की अभिलाषा से चंचलमन की वृत्ति से दर्शन के समय अतियन्त प्रिय विषय पुत्रादिकों को पाकर गोद में प्रियता के साथ लगाने से विषय इच्छु पुरुष के अति समीप आत्मा नन्द से। एक क्षण विषय प्राप्ति के निमित से मन वृति स्थित हुई में प्रतिबिंब भान होकर फिर द्वैत शब्दादि विषयों में चंचल मन वृति होकर दुःख मानता है। आत्मानन्द से अन्य विषय में आनन्द का भ्रम होने से आत्मानन्द के अविवेक होने से। इस हेतु से द्वैत दर्शन ही प्रति बंध है वास्तव से प्रतिबंध नहीं है ॥

शं—द्वैत द्रष्टा कौन है परमात्मा है वा जीव है वा पर है ॥

सि—परमात्मा जीव जड़ का "सर्वंखलु इदं ब्रह्म!" यह सर्व निश्चयकर ब्रह्म है ॥ इस एकता हुये द्वैत द्रष्टा शुद्ध कूटस्थ ही है॥

शं—फिर मोक्ष काल में भी द्वैत दर्शन का प्रसंग होगा ॥

सि—मोक्ष काल में द्वैत का दर्शन अनिष्ट नहीं है। मोक्ष को नित्य होने से मोक्ष तीनों काल में अबाध होने से वर्तमान में द्वैत दर्शन होने से ॥

शं—न—द्वैत दर्शन काल में कोई मोक्ष का अनुभव नहीं किया है। इस हेतु से मोक्ष सर्व काल में नहीं है ॥

सि—हां फिर जो सर्वकाल में अनुभव कर्ता सोई द्वैत द्रष्टा है। आपको भी यही निश्चय है। फिर द्रष्टा का प्रश्न क्यों करते हैं ॥

शं—इससे क्या अर्थ हुआ ॥

सि—जो द्वैत का दर्शन वही सच्चिदानन्द आत्मा स्वरूप मोक्ष के आवि-र्भाव का प्रतिबंध है ॥

शं—तब आत्मा ही प्रतिबंध हुये में मैं द्वैत का अद्रष्टा को मोक्ष आविर्भाव क्यों नहीं होती है ॥

सि—क्या आप इनसे भिन्न हैं कि द्वैत का अद्रष्टा होते हैं ॥

शं—तिनके आत्मा रूपता से मुझे अनुभव नहीं है। उनके सुख दुःखादि से मैं लीपायमान नहीं होते हैं। फिर आश्चर्य है कि सब द्वैत देव मनुष्य पशु आदिकों को देखते हुये मैं आत्मा से भिन्न नहीं देखता हूं। ऐसे आपके वचन में कैसे मैं श्रद्धा करूं। सन्यासी तत्ववेता को यह उचित है। जो असत्य वचन बोलते हैं ॥

सि—मैं आपसे अभिन्न हूं फिर मेरे असत्य भाषणता से क्या आप असत्य वादी नहीं हुये ॥

शं—मेरे आपके एकत्व का द्रष्टा कौन है। सद्वितीय है वा अद्वितीय है। यदि सद्वितीय कहें तो प्रथम दोष असत्य का भाषण द्वितीय दोष ये है कि आपी विद्वान और आपी आचार्य तत्ववेता मुझे ब्रह्म रूप की प्राप्ति करायेंगे। जो कि द्वैत वार्ता का न जानने वाले सद्वितीय कहते हैं। और "एकमेवाद्वितीयं' एकअद्वितीय है॥ " नेह नानाऽस्ति किंचन" इस ब्रह्म में नाना किंचित नहीं हैं ॥ इन श्रुतियों का विरोध है ॥

सि—फिर अद्वितीय पक्ष से उक्त दोष का अभाव हो ॥

वादी—हां सत्य है ॥

सिं—फिर मुझको अपना आत्मा रूप अद्वितीय किससे जाना की हां करते हैं ॥

वादी—आपके वचन से उदाहृत शास्त्र से ॥

सि—ऐसे कहो तो प्रबुद्ध हो ज्ञान वान हो आप इससे परे प्रश्न के योग्य नहीं है। आत्मा के जानने से परे वस्तु अविदित नहीं रहती है॥

शं—परे अनात्म वस्तु जानने को शेष है ॥

सि—न "आत्मनो वादर्शनेने श्रुत्या मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितं" इस श्रुति से आत्मा के दर्शन करके इतर सर्व दर्शित हो जाते हैं ॥ ५५ ॥

शं—यह कथन युक्त नहीं है। इतर सर्व आत्मा से भिन्न हैं वा अभिन्न हैं। भिन्न कहो तो अन्य के दर्शन से अन्य का दर्शन असम्भव है घट के दर्शन किये पट नहीं दृश्य है। अन्य था घटपट की एकता होनी चाहिये। आत्मा अनात्मा के विरोध से द्वितीय पक्ष भी असिद्ध है। तिस हेतु से आत्मा के दर्शन से सर्व दृष्ट हैं यह कथन अयुक्त है॥

सि—यह दोष नहीं है श्लोक से कहता हूं—

सि—आत्मसत्तैवद्वैतसत्तासत्तानान्यायतस्तत् ॥
आत्मन्येवजगत्सर्वंदृष्टेदृष्टं श्रुतेश्रुतम् ॥५६॥

॥ पदच्छेद ॥

आत्म-सत्त-एव-द्वैत-सत्ता-सत्ता-न-अन्या-यतः-तत्। आत्मनि-एव-जगत्-सर्वं-दृष्टे-दृष्टं-श्रुते-श्रुतम् ॥

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

आत्म	— आत्मा की	न	— नहीं है
सत्त	— सत्ता	सर्वं	— समस्त
एव	— ही	जगत्	— जगत्
द्वैत	— द्वयत प्रपंच की	आत्मनि	— आत्मा के
सत्ता	— सत्ता है	एव	— ही
यतः	— जो सत्ता	दृष्टे	— दृष्टि से
तत्	— व्याप्त है सो	दृष्टं	— दृष्ट है
सत्ता	— सत्ता	श्रुते	— श्रवण से
अन्या	— अन्य	श्रुतं	— श्रुत है

॥ भावार्थ ॥

आत्मा के सत्ता से अतिरिक्त सत्ता का अभाव होने से आत्मा ही की सत्ता द्वयत प्रपंच की सत्ता है। जो सत्ता सर्व जगत् में व्याप्त है सो सत्ता अन्य नहीं है। तथा आत्मा के ही सत्ता युक्त सर्व जगत् आत्मा के दृष्टि होने से दृष्ट है और श्रवण होने से श्रुत है॥ जैसे रज्जु रूप के दर्शन से अध्यस्त सर्प दंडादिकों का स्वरूप दृष्ट है। इस करके विधि निषेध शास्त्र की भी अनुत्पत्ति नहीं है। सो "तद्यथाइदं सर्वं यदयमात्मा" जो यह आत्मा सो यह सर्व है॥ "सदेव सोम्येदमग्रासीत एक मेवाद्वितीयं" हे शिष्य इस जगत् के प्रथम सत्य ही था। एक अद्वितीय था॥ "एतदात्म्यमिदं सर्वं" यह आत्मा हीं यह सब है॥ इत्यादि विधि शास्त्र से। और "नेह नाना इति किंचन" "अथात् आदेशो" तदंतर यह उपदेश है॥ "नेतिनेति" नहीं है नहीं है॥ "नैत्यन्यत्परमस्ति" इस से परे अन्य नहीं है॥ "नतत् द्वितीयमस्ति" तिससे द्वितीय नहीं है॥ इत्यादि निषेध शास्त्र से इस लोक में रज्जु सर्पादि के सम स्वर्गादि आत्मा में अध्यस्त के प्रति यह सर्व स्वर्गादि नरकादि का उपदेश है॥

शं—विधि निषेध शास्त्रों के मध्य कौन श्रेय है॥

सि—यद्यपि दोनों शास्त्र का एक अर्थ है। तथापि विधि शास्त्र श्रेय है॥

शं—फिर दोनों में प्रवृति क्यों होती है॥

सि—अधिकारी भेदसे दोनों शास्त्र में प्रवृति है। कोई अधिकारी की बुद्धि संसार दुःख से अत्यन्त चित् उपहत हुआ है तिसको निवृतिकेनिमित प्रथम निषेध शास्त्रसे उपदेश करके पश्चात् विधि शास्त्रका उपदेश है। जैसे रज्जु में अध्यस्त सर्पके भयहुये प्रथम (नायंसर्पः) इस निषेध वाक्यके उपदेशसे संतोशित करके पश्चात् सर्पका अधिष्ठान रज्जु है। इस विधि वाक्य से उपदेश है। तथा जिसको संसार के अत्यन्त अनुद्विग्न से भ्रमित हुआ (क्या यह जगत् है) इस प्रश्न के प्रति "इदं सर्वं यदयमात्मा" यह विधि वाक्य से उपदेश करके पश्चात् "नेति नेति" इस निषेध वाक्य का उपदेश है। जैसे अध्यस्त सर्प के प्रतिकार ज्ञान से निर्भय हुआ पूछता है कि (यह क्या है) इस प्रश्न के प्रति उत्तर है कि रज्जु तीनों काल में है इस प्रकार अवस्था के भेद से दोनों शास्त्र उपयोगी हैं। व्यर्थ नहीं हैं। ब्रह्म आत्मा के प्रतिपादक होने से॥

शं—तथापि इस द्वैत का दृष्टा कौन सिद्ध हुआ अभी तक निश्चित नहीं हुआ॥

सि—कहता हूं गौड़ाचार्यजी ने कहा है—

तूच्छानिर्बचनीया च वास्तवीचेत्यसौत्रिधाज्ञेया ।
मायात्रिभिर्वोधैः श्रौतयौक्तिकलौकिकैः ॥१॥

अर्थ-यह माया तीन पुरुषों करके तीन प्रकार से ज्ञात है । ज्ञानियों के प्रति तुच्छ है । पंडितों के प्रति अनिर्वचनीय है लौकिक (अज्ञानियों) के प्रति वास्तवी (सत्य) है ॥१॥ वाशिष्ट जी ने भी कहा है-

अहोनुचित्रंयत्सत्यं ब्रह्मतद्विस्मृत्यनृणांयदसत्यम विद्यारव्यंतत्पूरः परिबलाति । तथा अहोनुचित्रं पद्मौत्थैर्वद्धास्तंतुभिरद्रयः अविद्यमानायाऽविद्यातया विश्वमखिली कृतम् ॥१॥

अर्थ—हे चित्र रथ आश्चर्य है कि जो सत्य ब्रह्म को विस्मृत्य होकर असत्य जो अविद्या का निर्णय करना कि सो अविद्या प्रबल है । तथा हे चित्र रथ आश्चर्य है कि कमल से उत्पन्न तंतु करके वद्यागज जल से सींजता है । तैसे अविद्यवान के अविद्या करके कृत् समस्त जगत् है ।।१।। इस श्रुति स्मृति करके द्वैत और दर्शन माया रचित तुच्छ होने से स्वतः सिद्ध शुद्ध वुद्ध मुक्त कूटस्थ परिपूर्णानन्द आत्मा का विशेषण (अद्वष्टद्रयं) युक्त है॥ तथा श्रुति प्रमाण है—

“ननिरोधोनचोत्पतिर्नवद्धो न च साधकः ।
न मुमुक्षुर्नवैमुक्त इत्येषा परमार्थतः” ॥१॥

अर्थ—जगत् की न उत्पति है न नाश है न कोई वद्ध है न कोई साधक है। न कोई मुमुक्षु है न कोई मुक है यह परमार्थ से ऐसा अनिर्वाच्य कहा है ॥ १ ॥ इन हेतुओं से निष्कल ब्रह्म निर्विकार निर्विकल्प निरंजन (सो ब्रह्म मैं हूं) ऐसा जानके ब्रह्म को प्राप्त होता है । प्राप्त भी कथन उपदेश में है । वास्तव से निश्चय निर्विकल्प अनन्त द्वयत एकत्व से रहित हेतु दृष्टान्त से वर्जित “अप्रमेयं अनादिं च यत् ज्ञात्वा मुच्यते वुद्धः” प्रमाण से रहित अनादि जिसको जान कर वुद्धिमान स्वभिन्नतादि भ्रम से मुंचित हो जाते हैं॥ इस प्रकार द्वैत की शून्यता हुए आत्मा को द्वैत दर्शन से शून्यत्व कहा है ॥ ५६ ॥

तिस हेतु से श्लोक का व्याख्यान करता हूं—

सि-रात्यंज्ञानमनन्तं च पूर्णानन्द विग्रहम् ।
मात्रवर्णकमात्मानं विनिश्चत्यविमुच्यते ॥

॥ पदच्छेद ॥

सत्यं-ज्ञानम्-अनन्तं-च-पूर्ण-आनन्द-विग्रहम् ।
मात्र-गर्णकम्-आत्मानं-विनिश्चित्य-विमुच्यते ॥

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

सत्यं	— सत्य	विग्रहम्	— द्वैत का लय स्थान
ज्ञानं	— ज्ञान	आत्मानं	— आत्म को
अनन्तं	-- अनन्त	वर्णकम्	— वर्ण . मंत्र
च	— और	मात्र	-- मात्र से
पूर्ण	— परिपूर्ण	विनिश्चित्य	— निश्चय करके
आनन्द	— आनन्द	विमुच्यते	— मुक्त हो जाते हैं

॥ भावार्थ ॥

जिस हेतु से यह वास्तव रूप है । तिस हेतु से सत्य ज्ञान अनन्त परिपूर्ण आनन्द जगत् विवर्त का अधिष्ठान रूप से लय स्थान ब्रह्म आत्मा मंत्र वर्ण मात्र से सिद्ध को सत्यादि लक्षण युक्त आत्मा रूप निश्चय साक्षात्कार करके मुक्त हो जाते हैं ॥

शं— जैसा ज्ञान आप ने कथन किया है इस सदृश्य ज्ञान नहीं उत्पन्न होता है । उक्त साधन चतुष्टय संपन्न विद्वानों को मनन निधिध्यासनादि के अनुष्ठान के अनन्तर ज्ञान उत्पन्न होता है । अन्यथा साधनों के युक्त शास्त्र अप्रमाण होगा ॥

सि— साधन के अनन्तर ज्ञान उत्पन्न है परंतु फल दान के निमित विलंब है ॥

शं— "ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति" ब्रह्म वेत्ता ब्रह्म ही हो जाते हैं ॥ 'तरति शोक मात्मवित" आत्म वेत्ता शोक से तरते हैं ॥ इत्यादि श्रुतियों से साधनों का फल आत्म ज्ञान ही है । सम काल ही उपदेश किया है । इसके मध्य अन्य साधन और काल बिलंब का अभाव है । "तमेव विदित्वाति मृत्यु-मेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय" तिस आत्मा को जान कर मृत्यु से तरते हैं । इससे अन्य पंथ विद्यमान नहीं हैं ॥ इस श्रुति से अन्य साधन का निषेध है । तिस हेतु से संन्यास आत्म ज्ञान ही अमृतत्व मोक्ष का साधन यत्न से साधने योग्य है । तिसके अभाव से "इह चेदवे दोदथसत्यमस्ति न चेदिहा वेदिर्महती विनष्टिः" यदि इस अधिकारी शरीर को प्राप्त होकर आत्मा को जाना तब तो सत्य कल्याण है । यदि इस अधिकारी शरीर को प्राप्त होकर न जाना तो महान् हानि है ॥ ब्रह्मात्मा के ज्ञान उत्पन्न होने से फल के साथ विद्या उद्गार का स्मर्ण करते हैं । अविद्या विग्रह के आग्रह करके पिहित आत्मा उतकृष्य उत्तम पुरुषों के वुद्धि करके मुंज इषीका के सम पंच कोश से मुंचित कर कारण

कार्य रूप को विलय करके निःसंशय देखता हूं । द्वैत असत्य है । और संसार दुःख समुन्द्र कहां गया । सर्व यह द्वितीय चित्र के सम देखता हूं । निष्कल एक चित्षपु में स्थित हूं । आत्मा अद्वितीय अचिन्त सुख एक रूप देखता हूं । दग्ध रज्जु के सम यह प्रपंचाभास है । अद्वैत को कर अमलवत् अनुभव करता हूं । शरीर सर्प त्वचा के सम देखता हूं । इस प्रकार जीवन मुक्ति भी मुझ को प्रसिद्ध है । आश्चर्य अब मुझे भान होता है । कैसे द्वितीय निरस्त नित्य शिव चित् प्रकाश में है । इस प्रकार शास्त्र आचार्य के प्रसाद से अपरोक्ष करके तीव्र ब्रह्मात्मा तत्व का गुरु के भक्ति विनय का स्मरण करते हैं । हे गुरु आपके पादपंकज के आश्रय बिना मुझे सत्य भी असत्य के सम भान था अब आपके पदकमल के आश्रय से भेद बुद्धि नहीं होता है । आपके कृपा के परवश मेरा संसार रोग नष्ट हुआ है । आपके चरण रज को शिर पर धारण करके आपके चरणों पर मैं शरीर को पतन करके उपासना करता हूं ॥

सि— विद्या से अविद्या निवृत हुये संसार के इस लोक परलोक का संचारक लक्षण नाना योनि को प्राप्ति परिहार के द्वारा अनेक विध दुःख संकुल की निवृत्ति कैसे है ॥

वादी— तिस के हेतु काम कर्मादिक की स्थिति होने से निवृति है ॥

सि— अविद्या के निवृति करके कार्य की भी निवृति अवश्य है ॥

वादी— वैशेषिकों ने उपादान नष्ट हुये एक क्षण कार्य की स्थिति माने हैं । तैसे अविद्या निवृत हुये भी संसार एक क्षण स्थित है । एक क्षण में कोई क्षति नहीं है । तिस क्षण के सम तिस क्षण से उत्तर क्षण का अभाव होने से । तिस हेतु से अज्ञान निवृत हुये भी संसार निवृत नहीं है । प्रमाण के अभाव होने से । संसार निवृति के हेतु व्यर्थ प्रयास है ॥ ५७ ॥

सि— ऐसा वचन मत कथन कीजिये श्लोक को सवाधान होकर श्रवण कीजिये :—

सि—कर्ममूलमनर्थानांतच्चज्ञानेन बाध्यते ।
क्षीयन्तेचास्यकर्माणि तथा चश्रुतिशासनं ॥५८॥

इति श्री मत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ श्रीपूज्यपाद श्री स्वामी
ज्ञानानंदजी का शिष्य श्रीस्वामी प्रकाशानन्दजी
कृत् वेदांत सिद्धांत मुक्तावली
गत कारीकावली उत्तरार्द्ध
समाप्तः ॥

॥ पदच्छेद ॥

कर्म-मूलम्-अनर्थानां-तत्-च-ज्ञानेन-बाध्यते । क्षीय-न्ते-च-अस्य-कर्माणि-तथा-च-श्रुति-शासनम् ॥

॥ अन्वय शब्दार्थ ॥

अनर्थानां	— संसार का	अस्य	— इस पुरुष का
मूलम्	— कारण	कर्माणि	— सर्व कर्म
कर्म	— कर्म है	क्षीयन्ते	— नष्ट हो जाते हैं
तत्	— सो कर्म	तथा	— तैसे ही
ज्ञानेन	— ज्ञान करके	श्रुति	— श्रुति का
बाध्यते	— निवृत है	शासनम्	— उपदेश है
च	— अव्यार्थ	च	— अव्यार्थ
च	— पुनः	—	— —

॥ भावार्थ ॥

अज्ञान की निवृत हुयेभी संसार की अनिवृत्ति कहा सो अयुक्त है । क्योंकि अविद्या के सम कर्म भी संसार का मूल ज्ञान करके निवृत होने से अविद्या के सम अविद्या के कार्य से भी विद्या का विरोध होने से कर्म अविद्या से अभिन्न है । जैसे रज्जु के साक्षात्कार से रज्जु के अज्ञान की निवृति और कार्य सर्पादि की अनिवृति असंभव है ।

शं—ज्ञान अज्ञान का ही निवर्तक है इस शास्त्र की क्या गति होगी ॥

सि—अज्ञान का कार्य अज्ञान से भिन्न नहीं है । अज्ञान के अभाव हुये कार्य के सत्यता की अनुपलब्धि है । इसमें प्रमाण का अभाव नहीं है ॥

"भिद्यतेहृदयग्रंथिच्छिद्यंतेसर्वसंशयाः । क्षीयन्तेचास्यकर्माणितस्मिन् दृष्टे परावरे" ॥१॥

अर्थ—इस पुरुष के सर्व हृदय की कामनारूपी गांठ नष्ट हो जाती हैं और सर्व संशय छेदन हो जाती हैं । और इस पुरुष के सर्व कर्म नष्ट हो जाते हैं तिसके दृष्टि में (पर) परमात्मा (अवर) जीव की एकत्व का साक्षात्कार दृढ़ कर अमलवत् निश्चित है ॥१॥ इस श्रुति का प्रमाण है ॥

शं—यह श्रुति शुभकर्म निवृति के परायण है ॥

सि—कर्म शब्द शुभ अशुभ में साधारण है । विद्या में दोनों कर्म के नष्टता का सामर्थ है ॥ श्लोक—

ब्रह्मात्मैकत्व विज्ञानंशाब्दं देशिकपूर्वकम् ।
बुद्धिपूर्वकृतंपापंकृत्स्नदहतिवह्निवत् ॥१॥

अर्थ—ब्रह्म आत्मा का एकत्व ज्ञान उपदेष्टा पूर्वक शब्द ज्ञात समस्त पापों को अग्नि के सम दाह करता है ॥१॥ श्लोक—

यथैधांसिसमिद्धोग्निर्भस्मस्यात्कुरूते अर्जुन ।
ज्ञानाग्निःसर्व कर्माणि भस्मस्यात्कुरूते तथा ॥१॥

अर्थ—हे अर्जुन जैसे प्रज्वलित अग्नि काष्ट को भस्मि भूत करती है। तैसे ज्ञान अग्नि सर्व कर्मों को भस्मि भूत करता है १॥ इस कृष्ण जी के वचन से भो सर्व शब्द से अशेष पाप पुण्य का ग्रहण होन से । तथा—

यस्य दर्शन मात्रादन्येष्यामपि पाप क्षयोजायते।
का कथा तस्य ब्रह्मी भूतस्य पाप क्षये तदा॥१॥

अर्थ—जिस ज्ञानवान के दर्शन मात्र से अन्य जीवों का पाप नष्ट हो जाता है। फिर तिस ब्रह्मरूप मुनि के पाप के नष्टता में का कहना है ॥१॥ ऐसा वशिष्ट जीने कहा है ॥ श्लोक—

यस्यानुभव पर्यंतं तत्वे बुद्धिः प्रवर्तते ।
तद्दृष्टि गोचराः सर्वे मुच्यंते सर्व पातकैः॥१॥

अर्थ—जिसकी अनुभव पर्यन्त तत्व में बुद्धि प्रवर्तित है। तिसके द्रष्टि के देखने मात्र से सर्व जन सर्व पापों से मुंचित हो जाते हैं ॥१॥ तथा ब्रह्मवेता का कुछ भी पवित्र हो जाता है। स्मृति—

कुलंपवित्रंजननीकृतार्थाविश्वंभरापुण्यवतीचतेन ।
अपारसंवित्सुखसागरेस्मिन्लीनंपरेब्रह्मणियस्य चेतः ॥१॥

अर्थ—इस अपार विज्ञित सुख सागर परे ब्रह्म में जिसका चित लीन है। तिसका कुल पवित्र और माता कृत कृत्य है। और तिस पुरुष करके

पृथिवी पुण्यवती हुई है ॥ १ ॥ इस हेतुओं से जो उक्त ब्रह्मात्मा का एकत्वज्ञान तिससे कृत कृत्य हैं वह पुरुष । यहां पर अब विवाद की योग्यता नहीं है अनुभव करके आप देखिये ॥ ५८ ॥

॥ समाप्ति का श्लोका: ॥

उकारोहिर्णगर्भोस्यात् मकारोईशसंगकः ।
विश्वसंधिअकारस्तुउमाशब्दाभिधीयते ॥१॥
धाताईशशङ्करणांत्रिवर्णाधिकरणका ।
एतेसर्वानन्दोयसौ उमानन्द प्रकृतिता ॥२॥

॥ श्लोक ॥

जमुनातटेदक्षिणदिशाप्रायागात्कोशपंचकं ।
नग्रवारपूरेशुभक्षेत्रेमार्ग शुक्लश्चदशम्यां ॥
अग्निअष्टि अधिकेअब्देएकोनवींसतिशते ।
कुजअन्तभशुभयोगेग्रन्थसमाप्तिकृतोमया ॥१॥

इति श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री सरजू
पारगतम झवली राजधानी से पंच कोश
नैऋत में श्रीसरजू के तट बरहज नग्र
निवासी श्री १०८ श्रीस्वामी अनन्त
जी पूज्य पाद का अल्पज्ञ शिष्य
स्वामी उमानन्द कृत् वेदान्त
सिद्धांत मुक्तावली वाल
बोधिनी पददीपिका
टीका भाषाभाष्य
गद्य द्वितीय भाग
उत्तरार्द्ध समाप्तः
॥ इति ॥

॥ हरिः ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु ॥

॥ वेदान्त सिद्धान्त मुक्तावली ॥

॥ पाठ के निमित्य ॥

॥ मूल मात्र प्रारम्भः ॥

अदृष्ट दृश्यमानन्दमात्मानं ज्योतिरव्ययम् ।
विनिश्चित्य श्रुतेः साक्षाद्युक्तिस्तत्राभिधीयते ॥ १ ॥
आत्मा नित्योऽथवाऽनित्यो भेदस्त्वाद्ये स्फुटोमतः ।
अन्त्ये कृतस्य हानिः स्यादकृताऽभ्यागमस्तथा ॥ २ ॥
जीव-श्रया ब्रह्मपदाह्यविद्या तत्वविन्मता ।
तद्विरुद्धमिदं वाक्य मात्मात्मज्ञान गोचरः ॥ ३ ॥
प्रत्यक्षादि प्रमाणानां प्रमात्वं परतो यदि ।
अनवस्था स्फुटा तत्र स्वतस्त्वे दोष संशयाः ॥ ४ ॥
जीव ब्रह्म प्रयोगा भ्यामेकं वस्त्वथवा द्वयम् ।
आद्येत्विष्टं ममैव स्यात् द्वितीये तवन्मतक्षतिः ॥ ५ ॥
अविद्या स्वाश्रयाभिन्ना विषयास्यात्तमोयतः ।
यथा बाह्यं तमो दृष्टं तथा चैयं ततस्तथा ॥ ६ ॥
ब्रह्मात्मनोर्विभिन्नत्वे भेदः स्वभाविको यदि ।
औपाधिकोऽथवा भेदः सर्वथानुपपत्तिकः ॥ ७ ॥
श्रु० "आश्रयत्व विषयत्व भागिनी निर्विभाग चितिरेव केवला ।
पूर्व सिद्ध तमसोहि पश्चिमोनाश्रयोभवतिनापि गोचर." ॥ १ ॥
लौकिकी वैदिकी चापि नाज्ञाने दृश्यते प्रमा ।
कार्य दृष्ट्वाथ कल्प्यं चेल्लाघवादेकमेव तत् ॥ ८ ॥
बंध मोक्ष व्यवस्था स्याज्जीवा भेदे कथं तव ।
यथा दृष्टं तथैवास्तु दृष्टत्वात्स्वप्न दृष्टवत् ॥ ९ ॥
अज्ञात सत्वं नेष्टं चेत् व्यवहारः कथं भवेत् ।
नह्य दर्शन मात्रेण विषयाणां नाश निश्चयात् ॥ १० ॥
सत्व त्रयं वदन् वादी प्रष्टव्योत्राधुना मया ।
सत्यं द्वैतमसत्यं व नासत्ये त्रिविधं कुतः ॥ ११ ॥
द्वैत भेद प्रति ज्ञानं प्रत्यभिज्ञा कथं वद ।
दशानांयुगपत्सर्प भ्रमे यद्वत्तथैव सा ॥ १२ ॥
सर्प भ्रमाद्विशेषोस्ति जाग्रद्बोधेऽन्यथा कथं ।
इन्द्रियादेरुपादानं तद भावेयतो न धीः ॥ १३ ॥

इन्द्रियाणां कारणत्वे भवेत् चोद्यं तदा तव ।
स्वप्न भ्रमे यथा तेषामन्वय व्यतिरेक धीः ॥ १४ ॥
मृदादीनां कारणत्वं न चेदिष्टं घटं प्रति ।
अविद्यायाः कारणत्वं कथं सिद्धेत्प्रमाबिना ॥ १५ ॥
यथा सतो जनिर्नैवमसतापि जनिर्नच ।
जन्यत्वमेव जन्यस्य मायिकत्व समर्पकम् ॥ १६ ॥
प्रतीति मात्र सत्वं चेत्सत्वं प्रातीतिकं मतं ॥
अविरोधान्मयापीष्टं तद्भेदे वद का प्रमा ॥ १७ ॥
प्रत्येतव्य प्रतीत्योश्च भेदः प्रमाणिकः कुतः ।
प्रतीति मात्रमेवैत द्भाति विश्वंचराचरं ॥ १८ ॥
ज्ञान ज्ञेय प्रभेदेन यथा स्वाप्नं प्रतीयते ।
विज्ञान मात्रमवैत त्तथा जाग्रच्चरा चरम् ॥ १९ ॥
तंतोर्भेदे पटो यद्वत् शून्य एव स्वरूपतः ।
आत्मनोपि तथैवेदं भान मात्रं चराचरं ॥ २० ॥
रज्जुः यथा भ्रान्त दृष्टया सर्प रूपा प्रकाशते ।
आत्मा तथा मूढ बुद्धया जगद्रूपः प्रकाशते ॥ २१ ॥
आत्मन्येव जगत्सर्वं दृष्टि मात्रमतत्वकं ।
उद्भूय स्थितिमादाय विनश्यंति मुहुर्मुहुः ॥ २२ ॥
पूर्णानन्दाद्वये शुद्धं पाप दोषादि वर्जिते
प्रतिबिंबमिवा भाति दृष्टि मात्रं जगत्त्रयम् ॥ २३ ॥
यत्तत्वं वेद गुप्तं परम सुखतमं नित्य मुक्त स्वभावं
सत्यं सूक्ष्मात्सुसूक्ष्मं महदिदममृतं मुक्त मात्रैकगम्यं ।
यस्यांशेलेश मात्रं जगदिदमखिलं भ्रान्ति मात्रैकदेहम्
प्रत्यक् ज्योतिः स्वरूपं शिवमिदमधुना कथ्यते युक्तितोत्र ॥ २४ ॥

॥ पूर्वार्द्धं समाप्तः ॥

॥ उत्तरार्द्धं प्रारम्भः ॥

आत्मायं सर्व संबंद्धो भानु भासक उच्यते ।
नित्योयम बिनाशित्वा दुपादेयः कथं भवेत् ॥ २५ ॥
य आत्मा सर्व वस्तुनां यदर्थं सकलं जगत् ।
आनन्दाब्धिः स्वतंत्रोसावनादेयः कथं वद ॥ २६ ॥
यदन्यद्वस्तु तत्सर्वं यद्भेदे नर श्रृङ्गवत् ।
सत्ता सर्व पदार्थाना मनादेयः कथं वद ॥ २७ ॥
यद्वशे प्राणिनः सर्वे ब्रह्माद्याकृमयस्तथा
ईशानः सर्व भूतानामनादेयः कथं भवेत् ॥ २८ ॥

यच्चक्षुः सर्व भूतानां मनसोयन्मनो विदुः।
यज्ज्योति ज्योतिषां देवो नोपादेयः कथं विभुः ॥ २९ ॥
मोद प्रमोद पक्षाभ्यामानन्दात्मा तमो गतः ॥
जीव यदखिलान् लोकानऽनादेयः स्वयं कुतः ॥३०॥
यस्यानन्द समुन्द्रस्य लेश मात्रं जगत-गतम्।
प्रसृतं ब्रह्मलोकादौ सुखाब्धिं कः परित्यजेत् ॥३१॥
हैरण्य गर्भ मैश्वर्यं यस्मिन्दृष्टे तृणायते ॥
सीमा सर्व पुमर्थानाम पुमर्थं कथं भवेत् ॥३२॥
यत्कामा ब्रह्म चर्यंत इन्द्राद्याः प्राप्त संपदः ॥
स्वस्व भोगं त्यजंत्यैवमपुमर्थं कथं नृणाम् ॥३३॥
यद्विवृक्षा फलाः सर्वा वैदिक्यो विविधा क्रियाः ॥
यागाद्या विहितास्तस्मिन्नुपेक्षा वदते कथं ॥३४॥
यद्दृष्टि मात्रतः सर्वाः कामाद्याः दुःख भूमयः ॥
विनश्यन्ति क्षणेनासावुपादेयः कथं नते ॥३५॥
अह्लाद रूपता यस्य सुषुप्ते सर्व साक्षिकी ॥
तत्रोपेक्षा भवेत्यस्य तदन्यः स्यात्पशुःकथं ॥३६॥
विरुद्धयोर भेदोहि न वेदेन प्रमीयते ॥
अनन्य गति कत्वेन मानान्तरस्य बाधनं ॥३७॥
ब्रह्माज्ञानाज्जगज्जन्म ब्रह्मणोऽकारणत्वतः ॥
अधिष्ठानत्व मात्रेण कारणं ब्रह्म गीयते ॥३८॥
प्रश्नस्य ज्ञान पूर्वकत्वादाक्षेपे प्रतियोगिधीः ॥
अवश्यं भाविनी पूर्वा विरोधः स्यादितोन्यथा ॥३९॥
साक्षात्कृतेत्वधिष्ठाने समनन्तर निश्चितिः ॥
अध्यस्य मानं नास्तीति बाध इत्युच्यते बुद्धैः ॥४०॥
उपमर्दस्वभावत्वमविद्याया विरोधिता ॥
तत्कर्त्तृत्वं तु विद्यायाः प्रकाश तमसोरिव ॥४१॥
कल्पितोप्युपदेष्टा स्याद्यथा शास्त्रं समादिशेत् ॥
नचाविनिगमो दोषोऽविद्यावत्वेन निर्णयात् ॥४२॥
उपाधि संश्रयोह्यात्मा आनन्दत्वं तदाश्रयः ॥
विशिष्ट शक्ति पक्षेतु व्यक्तिवो शक्ति गोचरः ॥४३॥
आनन्द रूपमात्मानं सच्चिदद्वय तत्वकम् ॥
अपूर्वादि प्रमाणोक्तं प्राप्याहं तद्वपुः स्थितः ॥४४॥
योहमद्वय वस्त्वेव सदव्यय दृढ़ निश्चयः ॥
प्राप्य चानन्दमात्मानं सो हमद्वय विग्रहः ॥४५॥
नास्ति ब्रह्म सदानन्दमिति मे दुर्मतिस्थिता ॥
क्व गता सा न जानामि यदाहम् तद्वपुः स्थितः ॥४६॥

पूर्णानन्दाब्धये तत्वेमेर्वादि जगदाकृतिः ॥
बोधेऽबोध कृतैवासीदबोधःकगतोधुना ॥४७॥
संसार रोग संग्रस्तो दुःख राशिरिवापरः ॥
आत्म बोध समुन्मेषादानन्दाब्धिरहो स्थितः ॥४८॥
योहमल्पेपि विषये रागवानति विह्वलः ॥
आनन्दात्मनि संप्राप्ने स रागः क गतोधुना ॥४६॥
यस्य मे जगतां कर्त्तुः कार्यैरपहृतात्मनः ॥
आविर्भूत परानन्दमात्मा प्राप्त श्रुतेर्वलात् ॥५०॥
परामृष्टोसि लब्धोसि प्रोषि तोसि चिरं मया ॥
इदानीं त्वामहं प्रारो न त्यजामि कदाचन ॥५१॥
त्वां विनानिः स्वरूपोहं मांविनात्वं कथं स्थितः ॥
दृष्ट्येदानीं मया लब्धो योसि सोसि नमोस्तुते ॥५२॥
देहाभिमान.निगडैर्बद्धोऽबोधाख्य तस्करैः ॥
चिरंते दर्शनादेव त्रुटितं बधनं क्षणात् ॥५३॥
विशुद्धोस्मि विमुक्तोस्मि पूर्णात्पूर्णतमाकृतिः ॥
असंस्पृश्यतमात्मानमन्तर ब्रह्मांड कोटयः ।५४।
तत्त्वमस्यादि वचो जालमावृतमसकृत्पुरा ॥
इदानीं तत्श्रवादेव पूर्णानन्दो व्यवस्थितः ॥५५॥
आत्म सत्तैय द्वैत सत्ता सत्ता नान्या यतस्तत ॥
आत्मनि एव जगत्सर्वं दृष्टे दृष्टं श्रुते श्रुतम् ॥५६॥
सत्यं ज्ञानमनन्तं च पूर्णानन्द विग्रहम् ॥
मात्र वर्णकमात्मानं विमुक्त श्च विमुंच्यते ॥५७॥
कर्म मूलमनर्थानां तत्त्व ज्ञानेन बाध्यते ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तथा च श्रुति शासनम् ॥५८॥

इति श्री मत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ श्रीपूज्यपाद श्री स्वामी
ज्ञानानंदजी का शिष्य श्रीस्वामी प्रकाशानन्दजी
कृत् वेदांत सिद्धांत मुक्तावली
गत कारीकावली उत्तरार्द्ध
समाप्तः ॥

ॐ

॥ अभ्यासन विधि ॥

हे गुरो यद्यपि कर इस ग्रंथ का उपदेश आपके मुखारविन्द से श्रवण किया और श्रद्धा पूर्वक ग्रंथ की विषय दृढ़ निश्चय भी किया। तथापि इस संसार द्वैत को अतीत अनागत कालिक एक स्थित होने से स्वप्न की तुल्यता का दृढ़ निश्चय नहीं होता है। किंतु —

पुनर्द्वैतस्यवस्तुत्वं भाति चेत्त्वं तथापुनः ॥

अर्थ--पुनः यह जगत द्वैत स यवत भान होता है। और इस सत्यता भान होने से जो आत्मानन्द अद्वित तिस अद्वित का भान नहीं होता है। इस हेतु से दृष्ट दुःख की निवृति नहीं होती है। यद्यपि कर बहिरंग साधन से अतीत विवेक १ वैराग २ षट सपति ३ मुमुक्षुता ४ श्रवण मननादि अन्तरंग साधनों से संपन्न हूं ॥

(चेत्त्वं तथा पुनः) हे शिष्य यदि ऐसा कहो तब पुनः—

परिशीलयकोवात्र प्रयासस्तेन ते वद ॥१॥

अर्थ—साधन संपन्न शुद्ध चित्त को अन्तरंग करके नित्य निरन्तर विवेक का और अभ्यास का परिशीलता कर तिस करके तेरे को का प्रयास है सो कह ॥ १ ॥

अर्थात्—हे शिष्य तेरे में पुनः पुनः विवेक और अभ्यास के अभाव से नवीन भी इस संसार का संस्कार स्थित होता जाता है। और अनादि काल के अज्ञान अवस्था के भी जाग्रत प्रपंच का संस्कार स्थित होने से यह दृष्टि सृष्टि जाग्रत जगत् अतीत अनागत कालिक एक ही सत्य रूप भान होता है। यद्यपि क्षण २ में जगत उत्पत्ति लय को प्राप्त होने से त्रिकालिक नहीं है। किन्तु अतीत से वर्तमान जगत् अन्य है। तथापि अतीत जगत् का संस्कार स्थित होने से स्वप्न सदृश्यभान नहीं होता है। किन्तु स्वप्न जो अतीत काल में हुआ वह वर्तमान भविष्यत में नहीं है। किंतु अन्य है। और जाग्रत तीनो काल में एक ही स्वप्न से विलक्षण सत्यवत् भान हैं ॥

सो स्वप्न जाग्रत में यह विलक्षणता है कि वृति रूपी भूमि में मन रचित यह स्वप्न प्रपंच रूपी वृक्ष उत्पन्न होकर क्षणमें जाग्रत सुषुप्ति हुए नाश को पावता है। और क्षण दो क्षण स्थित होने से संस्कार रूपी फल फलने का अवसर नहीं है। और जाग्रत अवस्था में स्वप्न को मिथ्या जानने से स्वप्न की विस्मृति होने से भी स्वप्न के संस्कार का अभाव है। तिस वंध्या स्वप्न रूपी वृक्ष का फल बीज वृत्ति रूपी भूमि में अभाव होने से वह अतीत स्वप्न के सदृश्य वर्तमान का स्वप्न नहीं है। किन्तु जाग्रत के संस्कार से और जन्मांतर के संस्कार से भिन्न,संस्कार रहित विलक्षण अन्य अन्य स्वप्न उत्पन्न होता है॥

और वृति रूपी भूमि में जाग्रनरूपी वृक्ष मन रचित (मनोमात्रमिदं द्वैतं यत् किंचित सचराचरं) यह चर अचर द्वैत मन मात्र ही रचित है ॥ इस गौडाचार्य के वचन से और "अस्य संसार वृक्षस्य मनो मूलमिदं स्थितं" इस श्रुति से मन ही इस संसार का मूल रूप स्थित है ॥ सो अनादि काल से वृति भूमि में दिन प्रति दिन स्वप्न सुषुप्ति से अधिक कालिक स्थित रहता है। और अधिक काल स्थिरता के हेतु जाग्रत में सत्यत्व बुद्धि भी है। इस हेतु से जाग्रत रूपी वृक्ष को संस्कार रूपी फल फलने का अवसर है। फिर संस्कार रूपी फल परिपक होकर वृति भूमि में झड़ जाता है। और जाग्रत वृक्ष स्वप्न सुषुप्ति में नाश को पावता है। यह सर्व को अनुभव है। परंतु जाग्रत समय के प्राप्त हुये तत्क्षण वह संस्कार रूपी बीज पूर्ववत् ही जाग्रत वृक्ष उत्पन्न वृति भूमि में करता है। सो स्वप्नवत् अतीत जाग्रत से अन्य है। परन्तु अविवेक से (वही यह जाग्रत प्रपंच है) ऐसी प्रतिभिज्ञा भान होती है। जैसे आम्र बीजै से आम्र ही उत्पन्न होता है। परन्तु वृक्ष अन्य है। और बंध्या वृक्ष और दग्ध बीज से तद्वत् अन्य वृक्ष की उत्पति नहीं है॥

तैसे बंध्या वृक्षवत् स्वप्न है ॥ यही संसार की विलक्षणता जाग्रत स्वप्न मैं है। जाग्रत स्वप्न की विलक्षणता किंचित नहीं है सो कहा है—

"वासनाक्षयविज्ञानंमनोनाशामहामते ॥
समकालंचिराभ्यस्ता भवंतिफलदामता" ॥ २ ॥

अर्थ—हे महा मति हनुमंत वासना संस्कार की क्षीणता तब तत्व ज्ञान मनो नाश वा मनो नाश तब तत्व ज्ञान वासना क्षय इस प्रकार परस्पर सम काल कुछ काल अभ्यास करके फल दाई होता है। इस श्रुति से संस्कार के नष्ट हुये स्वप्नवत् जाग्रत भी भान होता है। और स्वप्नवत् भानता से जाग्रत की सत्यत्व बुद्धि नष्ट होती है। तब आनन्द अब्धि के भान हुये द्वष्ट दुःख नष्ट होता है। सो संस्कार को नष्टता विवेक और अभ्यास से होती है। सो विद्यारण स्वामी उक्त है। कि—(विवेकेद्वैत मिथ्यात्वं युक्त्यैवेति) विवेक से द्वैत का मिथ्यात्व युक्त है। (अचिन्त्य रचनात्वस्यानुभूतिर्हि स्वसाक्षिकं) अचिन्त्य रचना पना इस संसार का स्वसाक्षि से अनुभव है। सो विवेक कहता हूं जो कि आगे बहुत सुगमता से दृष्टान्त चक्र में देखाऊंगा। इस विवेक से जाग्रत के संस्कार नष्ट हुये जैसे संस्कार रहित स्वप्न अन्य स्वप्न को उत्पन्न नहीं करता है तैसे जाग्रत भी संस्कार रहित अन्य जाग्रत को उत्पन्न नहीं करता है।

दृष्टान्त यह है कि जैसे (१) संख्या प्रथम एक दो स्वरूप से रहित शुद्ध निर्विकार असंख्य अनिर्वाच्य था। सो अपने शक्ति विन्दु (०) के साकाशात् इछता भया कि (एको अहं) तब शक्ति विंदु (०) का अधिष्ठान रूप होकर एक (१) रूपता को प्राप्त होकर संख्या चक्र के मध्य प्रथम नाम होता भया। फिर जब इछता भया कि (बहुस्याम) तब "एकोपि बहुधा भवंति" इस श्रुति से

अपने शक्ति विन्दु (०) से आच्छादित (।) इस रूप में होकर शक्ति विन्दु का विलक्षण स्वरूप अधिष्ठान (१) के सत्तास्फुरति से अधिष्ठान के आश्रित हुई (२) दो संख्या का स्वरूप होता भया आरारूप में इसी प्रकार (१) अधिष्ठान के आश्रित सत्तास्फुरित से शक्ति विन्दु (०) ३—४—५—६—७—८—९—नव संख्या प्रयन्त मुख्य अधिष्ठानता रूप (१) एक कारण के आश्रित विन्दु (०) की कारणता और विन्दु अधिष्ठान के साक्षात् एक संख्या के प्रति कारण हैं। इस प्रकार कारण कार्य भाव संख्यायों में है। परन्तु एक (१) से नव (९) ही प्रयन्त संख्यायों को कार्य कारण भाव है। और (९) ही प्रयन्त संख्याओं का स्वरूप है। अन्य कोई दशम संख्या का स्वरूप नहीं है। फिर दो (२) से (९) संख्या रूप अरों के एक (१) नाभ के आश्रित चक्र घूमते हुये विन्दु (०) शक्ति से विशिष्ट एक (१) विन्दु के तटस्थ हुया दश (१०) संख्या उत्पन्न होती भयी। फिर संख्या चक्र के व्यवहार में आप विशिष्ट रूप द होकर (११) और विन्दु विशिष्टता रूप (१) और दो (२) के तटस्थ हुआ (१२) होता भया। इस प्रकार (१०) से परार्द्ध प्रयंत संख्या (बहु स्याम) इच्छा से उत्पन्न हुये। परन्तु सर्व संख्यायों के चक्र व्यवहार एक (१) नाभ के आश्रित (८) अष्ट अरों से वर्तित हैं। इस प्रकार एक (१) से संख्यायों की उत्पति हुई है।
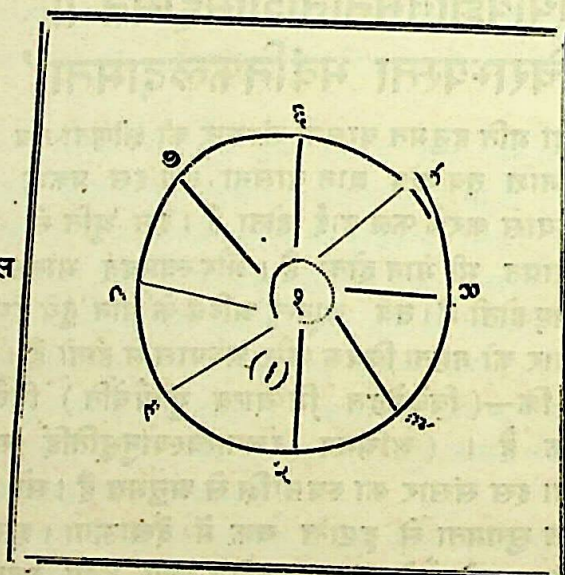
फिर कार्य की विलिनता कारण में ही होती है, यह नियम है। जैसे घट कार्य की विलिनता मृतिका में है। अथवा कल्पित कार्य का अभाव अधिष्ठान रूप है। सो देखता हूं कि एक (१) नाभ रूप संख्या को जिस संख्या से पृथक करो फिर सर्व संख्याओं के अधिष्ठान (१) एक के पृथकता से संख्या की आरा रूपता और चक्र व्यवहार के साथ स्वरूप ही का अभाव है। जैसे

पट कार्य के अधिष्ठान रूप कारण तन्तु के पृथकता से पट वा पटत्व व्यवहार और स्वरूप का अभाव तन्तु रूप है, सो कहा है (अधिष्ठानावशेषोहि नाश कल्पित वस्तुनः) अर्थ—कल्पित वस्तु का नाश अधिष्ठान का अवशेषता ही है ॥ ऐसे ही सर्व संख्याओं से (१) अधिष्ठान को पृथक किये से संख्याओं का संख्यात्व व्यवहार और स्वरूपा भाव (१) अधिष्ठान का स्वरूप ही है ॥

जैसे दश (१०) संख्या से (१) एक को पृथक् किये से दश (१०) का दशत्व व्यवहार और स्वरूपा भाव न नव (९) में है, न ग्यारह (११) में है, किन्तु एक (१) का स्वरूप है, इस प्रकार (९—८—७—६—५—४—३—२—) दो इत्यादि संख्या रूप अरों से एक (१) नाभ रूप अधिष्ठान को पृथक किये से द्वितीयत्व त्रितीयत्व आदि संख्याओं के चक्र व्यवहार का अभाव और स्वरूप का अभाव एक (१) रूप ही शेष है । सो एक (१) अपने शक्ति विन्दु (०) को शान्त कर के निरिच्छ असंख्य अरूप शुद्ध एक (१) दो (२) भाव से रहित अनिर्वाच्य रूप से तिष्ठित है ॥

तैसे द्राष्टान्त में संसार चक्र गत ब्रह्म प्रथम द्वैताद्वैता से रहित शुद्ध निर्विकार अप्रमेय अरूप अनिर्वाच्य था । सो अपने शक्ति मायाके एकाकात इच्छता भया कि (एकोहम्) तब माया उपहित एक अद्वितीय माया का अधिष्ठान रूप (स) सबल ब्रह्म होता भया । जो अनुपहित सो वाच्य का विषय अद्वितीय अधिष्ठान नहीं है । किंतु माया उपहित ही में अधिष्ठानत, अद्वितीयता सबलता इत्यादि कथन है । इस हेतु से आधेय से उपहित अधिष्ठाना अद्वितीय है । सो संसार चक्र का नाम होकर फिर इच्छता भया कि (बहुस्याम) तब माया से आच्छादित हुआ "एकोपि बहुधा भवंति" इस श्रुति से माया को सत्तास्फुर्ति देकर माया को विलक्षण (अ) अव्यक्त रूप करता भया फिर माया अधिष्ठान के आश्रित अधिष्ठान के सत्ता से (म) महत उत्पन्न करती भई फिर अधिष्ठान और माया के बल से महत (अ) अहंकार उत्पन्न करती भई तिस अहंकार से (ख) अकाश, आकाश से (वा) वायु, वायु से (ते) तेज, तेज से (ज) जल, जल से (पृ) पृथिवी । ये (८) अष्ट के मध्य अव्यक्त परा प्रकृति है और महत के अन्तर गत् मन (७) सप्त अपरा प्रकृति संसार चक्र के अरारूप अद्वितीय नाभ के आश्रित संख्यावत् नव ही में कारण कार्य भाव कल्पित है । सो अधिष्ठान का आभास माया के आश्रित अपरा प्रकृतियों से विशिष्ट चक्र क्रिया के ओह पोह गति से संसार और संसारत्व व्यवहार उत्पन्न होता भया । और नाभ के अश्रित अष्ट अरों के विलक्षणता से संसार भी विलक्षणता रूप से भान होता है । परन्तु समस्त जगत में में अनुगत (सबल) नाभ अधिष्ठान है और अष्ट (८) अरे जगत् की व्यक्ति हैं । इस प्रकार अद्वितीय सबल से जगत् चक्र वर्तित है । और शुद्ध ब्रह्मतटस्थ निःसंग अनधिष्ठान है । सोश्रुतिप्रमाण "पादोस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतन्दिव" इस ब्रह्म के एक पाद में समस्त भूतों की स्थिति

हैं, और तीन पाद स्वयं अमृत रूप व्याप्त है ॥ "स भूमि' सर्वतस्पृत्वात्यतिष्ठ दश ङ्गुलम्" वह ब्रह्म भूमि के प्रति सर्वत्र व्याप्त हुआ दश अङ्गुल दूर तिष्ठित है ॥ अर्थात् ब्रह्म के दशें अंश में माया है, और माया के दशें अंश में अहंकार, अहंकार के दशें अंश में आकाश, अकाश के दशें अंशमेंवायु, वायु के दशे अंश में अग्नि, अग्नि के दशें अंश में, जल, जल के दशें अंश में पृथिवी, पृथिवी के दशें अंश में ब्रह्माण्ड स्थित है ॥ इस प्रकार कल्पित संसार चक्र में यजुर्वेद के मंत्र का प्रमाण है—

मंत्र-"यस्मिनृचः सामयजु ँषियस्मिन्प्रतिष्ठितारथनाभाविवाराः ॥ यस्मिश्चित्त ँसर्वमोतंप्रजानान्तन्मेमनः शिवसंकल्पमस्तु" ॥३॥

अर्थ—जिस शिव कल्याण स्वरूप ब्रह्म में रथ नाभ के सम में अरा के सम ऋगु वेद यजुर्वेद सामवेद जिस में तिष्ठित है, और जिस चित्त में सर्व प्रजा पोये हैं, तिस कल्याण रूप को मेरा मन करके संकल्प है ॥
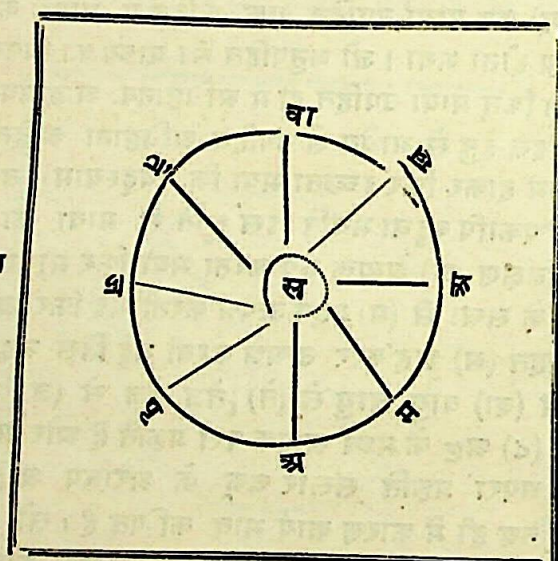
सो कार्य की विलिनता देखाता हूं, कि जगत् से अधिष्ठान रूप सबल (स) नाभ को पृथक् किये से जगत् का व्यवहार और स्वरूप का अभाव अधिष्ठान सबलरूप है। परन्तु अधिष्ठान की सत्ता पृथिवी आदि में विद्यमान होने से जगत् की विलिनता पृथिवी में दृष्ट है। तथापि पृथिवी में लयता नहीं है। अध्यस्त होने से। अध्यस्त, अध्यस्त का लय स्थान नहीं हो सका है। परन्तु स्थूल दृष्टि से कार्य कारण भाव आकाशादिकों में कल्पित होने से,

विलिनता भी कहा गया है। तथापि सर्व की विलिनता वास्तव में अधिष्ठान में ही है। यह प्रकृया दृष्टान्त में भी जान लेना।

फिर मुख्य नाभ रूप सबल अधिष्ठान को अरों से पृथक किये से अरों की कृया और स्वरूप का अभाव अधिष्ठान रूप होने से चक्र की कृया के अभाव हुवे संसार का ही अभाव है, क्योंकि चक्र रूप कृया ही संसार का स्वरूप है। फिर अधिष्ठान रूप नाभ हो अवशेष है। सो नाभ रूप सबल अपने शक्ति को शान्त कर के शुद्ध निर्विकार अखंड संसार प्रपंच से रहित द्वैत अद्वैत भाव से विवर्जित अनिर्वाच्य ब्रह्म है॥

इस प्रकार विवेचन करके ब्रह्म रूप ही सर्व संसार अतीत अनागत से रहित स्वप्नवत् क्षणिक प्रतीत मात्र है, जो प्रतीत मात्र है, सो मिथ्या है। और त्रिकाल बाध रहित ब्रह्म सत्य है, सो ब्रह्म मैं ही हूं। इस प्रकार विवेचन के पश्चात्" अहं ब्रह्मास्मि,, महावाक्य का अभ्यास अनन्य होकर करे। सो अनन्यता यह है (यस्य मनसः गति अन्ये न विद्यते स अनन्यः) जिसके मन की गति अन्य अनात्म वस्तु में न जावे वह अनन्य कहे जाते हैं॥" न वाणि मव सरं दद्यात् किंचिदपिम ना गवि,, मन को और वाणी को भी किंचित् अवसर अनात्म में जाने का न देना॥ वा जैसे उत्तम पतिवर्तधारी कन्या मात्र अपने पति का ही देखती है, अन्य पुरुष उसके दृष्ट से प्रतीत ही नहीं है। तैसे मात्र आत्मा के अन्यत्र, अनात्म दृष्टि की निवृति और आत्म दृष्टि की प्रवृति अनन्यता है॥ " "एक मेव विजानीथ ह्यन्या वाच्य विमुच्चयथ" हे शिष्य एक अद्वतीय को ही ज्ञान कर अन्य अनात्म वाक्य को त्याग कर॥ इस श्रुति से भी यही अनन्यता सिद्ध है॥ सो अभ्यास का साधन और प्रकृया अब कहता हूं॥ प्रथम साधन भगवान उक्त गीता से कहता हूं—

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च॥
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वारागद्वेषोव्युदस्य च॥५१॥
विविक्त सेवी लघवाशी यत वाक्य काय मानसः॥
ध्यानयोग परो नित्यं वैराग्यंसमुपाश्रितः॥५२॥
अहंकारं वलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्॥
विमुंच्य निर्ममो शान्तो ब्रह्म भूयाय कल्पते॥५३॥

अर्थ—विवेक से प्रपंच में सत्यत्व भाव रहित तत्व को सत्यता ग्राही शुद्ध बुद्धि करके युक्त १ और धीरता के साथ जो कि अभ्यास में उद्विग्न न हो २ और मन अन्तः करण को वश में करके जो कि मन अन्य देश में न जावे ३॥ और शब्द आदिक विषयों को त्याग कर जो की विषयों में अनुकूल प्रति कूल बुद्धि

से राग द्वेष न हो ४ और राग द्वेष से उदासीन रहे जो कि पुर्व की संस्कारी रागद्वेष उद्बुद न हों ५।५१॥

ऐसे साधन संपन्न परवत वा आरण्य वा नदी तट वा एकान्त देश में वास करे जो कि प्रपंच विषयों का संसर्ग न हो ६ और प्रारब्ध बशात् जिस किस प्रकार से वा माधूकरी से जो प्राप्त भोग उससे तत्काल अल्प अशन कर क्षुधा निवृत करे जो कि मांस मेद कम आलस निन्द्रा न हो, और वांडी को मौनता वा असत्य प्रपंचिक वार्ता से जै करे ८ और शरीर से अन्य क्रियायों की प्रवृति को जै करे ६ और मन को ज करे जो कि तत्व से अन्य में न जावे १०। और सदा तत्व के ध्यान के परायण रहे जो कि अन्य विषयों का ध्यान न हो ११ और वैराग्य के आश्रित रहे जो कि द्व ता का आश्रय न हो ॥ ५२ ॥

और संन्यासीत्व ब्रह्म चारीत्व ब्राह्मणत्वादि और देहत्व श्रेष्टत्व विद्यात्वादि के अहंकार से रहित १३ और विद्या वलसें किसी के मत का खंडन और सिद्धि बल से श्राप आशीर्वाद से रहित १४ । और कठोरता से रहित १५ और इच्छा १६ क्रोध से रहित हो जो कि किसी प्रकार का प्रमाद न हो १७ और सर्व वस्तु के संग्रह से रहित १८ और ममता से रहित १६ हुआ इन उन्नीस साधन संपन्न सर्व से मुक्त हुआ शान्तचित ब्रह्म प्राप्त के निमित अभ्यास करके ब्रह्म को प्राप्त होता है ॥ ५३ ॥

इन उक्त साधन संपन्नता से नवनो संस्कार की अभावता और अभ्यास की विक्षेप रहित समय प्राप्त होती है। और अभ्यास से पुरातीन वासना संस्कार कशाय की निवृति और मनोनास आनन्द अचिन्त्य को प्राप्ति होती है। तिस अभ्यास के समय का मुख्य साधन यह है—

दुःखं सर्वमनुस्मृत्य काम भोगान्निवर्पयेत ॥
अजं सर्वमनुस्मृत्य जातँ नैवतु पश्यति ॥७॥

अर्थ—सर्व काम इच्छित भोग विषय प्रपंच को विष तुल्य दुःख दाई स्मरण करता हुआ इच्छा भोगों से निवृत हुआ। सर्व द्वयत प्रपंच को कल्पित होने से "अस्ति" "भाति" "प्रिय" रूप व्यापक ब्रह्म आत्मा अधिष्ठान रूप अज स्मर्ण करता हुआ जायमान किंचित न देखे इस श्लोक के पुर्वार्द्ध में कैमुत का न्याय से समस्त साधन को सिद्धि है। और उतरार्द्ध से समस्त अभ्यास की सिद्धि है। जब अभ्यास से मन उपराम हो तब जगत में यही दो दृष्टि रक्खे यह दृष्टि से विस्मृत्य न हो ॥१॥

सो अभ्यास की प्रकृया अब कहता हूं कि "अहं ब्रह्मास्मि" वाक्य जो "तत्वमसि" श्रवण से उलट कर सिद्ध हुई उसको प्रथम चञ्चल मन को अंतर मुख करने के निमित वैखरी) वांडी स्थान से दीर्घ स्वर से उचारण करे और विद्यारण स्वामी ने भी कहा है इस अभ्यास को—

तत्कथनं तन्मननमन्योन्यं तत्प्रबोधनं ॥
एतदेक परत्वं च ब्रह्माभ्यासं विदुर्बुधाः ॥

अर्थ—तिसी ब्रह्मतत्व का कथन तिसी का मनन तिसी तत्व का परस्पर संबोधन करना। इसी एक परायणता को बुद्धिमानों ने अभ्यास कहा है। यह भी मौनता ही है क्योंकि मौनता का लक्षण भी ऐसा ही (मननशीलः इति मौनी) ममन शील को मौनी कहा है ॥८॥ और

"अशुभाच्चलितंयाति शुभां तस्मादपीतरत् ॥
पौरुषेण प्रयत्नेन लालयेच्चित्त वालकम्" ॥९॥

अर्थ—इस श्रुति से अशुभ वासना से चंचलता को प्राप्तचित्त को निस से इतर शुभ तत्व के वासना के प्रति चित्त रूपी वालक को रूचि कराने के निमित पुरुषार्थ प्रयत्न करके लाल न करे।

इस प्रकार कुछ काल पाकर जो मन की गति अज्ञात विषय देश में गमन करके और कार्य को करके संस्कार स्थित करने के पश्चात मन की गति ज्ञात होती थी। फिर शीघ्र वश में नहीं आती थी सो विषय देश में पहुंचते ही मन की गति ज्ञात होने लगती है। और कार्य संस्कार के स्थिरता का अवसर नहीं पाती तभी अभ्यासी पुरुष मन को निग्रह करके तत्व में जोड़ देते हैं। इस प्रकार कालान्तर में मन क्षण तत्व में क्षण वहिर गमनागमन करते हुये जब वाह्य जाते हुये भी विषयों में स्थिरता नहीं पाता किन्तु—

"द्रागभ्यासवशाद्याति यदाते वासनोदयम् ॥
तदाभ्यासस्य साफल्यंविद्धित्वामरिमर्दन" ॥१०॥

अर्थ—जब दृढ़ अभ्यास के बश से प्राप्त तत्व की वासना उदित हो तब अभ्यास की सफलता हे अरिमर्दन तू जानना ॥

फिर काल पाकर "अहं ब्रह्मास्मि" के साथ मन (वैखरी) स्थान से (पशयंत) हृदय प्रयंत ही गमनागमन करता है। और शरीर के व्यवहार समय भी तत्व के संस्कार युक्त ही बाहर गमन करता है। अन्य नवीनप्रपंच का संस्कार ग्रहण नहीं करता है। ब्रह्मानन्द के लेश का अनुभवी होने से अल्प विषयों में रागी नहीं होता है। "योवै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखं" इस श्रुति से जो भूमा ब्रह्म वही सुख है संसारी विषय में सुख नहीं और सर्व दृष्टि गोचर "अस्ति भाति प्रिये" रूप ब्रह्मात्मा का स्वरूप होने से 'यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र समाधि" जिस विषयों व देशों में मन जाता है तो ब्रह्मात्मा का समिपी होने से तिस २ विषयादिकों में ब्रह्मात्मा का स्मर्ण रूप समाधी में ही स्थित रहता है।

फिर ऐसे मन को अन्तर मुख करके (मध्य) कंठ स्थान से "अहं" और मेरुपता वांडी से "ब्रह्मास्मि" फिर कंठ से "अहं" और वांडी से "ब्रह्मास्मि" का स्मर्ण मालाकार रूप से पुनः पुनः अभ्यास करे। इस प्रकार के अभ्यास से जब मन स्वास्थान हृदय से वाद्य गमन करना चाहता है। तब कंठ प्रयंत आते हुये ज्ञात होजाता है (मध्य) स्थान कंठ मन के मार्ग पर स्थित होने से क्योंकि हृदय से निकलने का मार्ग कंठ है। फिर झठीही अभ्यासी मन को स्वस्थान पर पलटा कर स्थित करदेता है कि वाद्य गमन न हो। इस प्रकार के यत्न से समुद्र तटके सितलतावत् आनन्द अब्धि की समिपता की प्राप्ति होने से आनन्द का भान कुछ २ होते हुये पूरा तीन प्रयंच का संस्कार वासना कषायों का नष्टता प्राप्त शनैः २ होने लगती है। और

"अस्ति भाति प्रिये रूपं नामं चांश पंचकं ॥
आद्येत्रय ब्रह्मरूपं जगत् रूपं ततो द्वयं,, ॥११॥

अर्थ—इस श्रुति से (अस्ति भांति प्रिय नाम रूप) पंच अंशो में आदि तीन अंश रूप ब्रह्म का बाद्य दृष्टि समय देखते हुये दो अंश (नामरूप) जगत् स्वाप्न के नाम रूप जगत्वत् मिथ्या भान होने लगता है॥

फिर ऐसे मन को शनैः शनैः स्वास्थान (पश्यंति) हृदय में स्थित करके (पश्यंति) से "अहं" (मध्य) कंठ से "ब्रह्मास्मि" फिर (पश्यंति) से "अहं" (मध्य) से "ब्रह्मास्मि" का स्मर्ण मालाकार आवर्तन करे ताकि मन की गति (पश्यंति) और (मध्य) स्थान ही प्रयंत गमनागमन करे बाह्य गमन न हो तब तुरीया अवस्था जीवन मुक्ति की आनन्द अब्धि में क्षण मग्न क्षण वाह्य होते हुये आनन्द का अनुभवी अभ्यासी यती होता है। और प्रपंच का पूरा ३ संस्कार वासना कषाय दग्ध वीज वत् हुआ संसार दग्ध रज्जू के वटवत् प्रयोजन रहित भान होता है॥

फिर इस मन को उलटा कर (परा) स्थान नाभी कमल के सनमुख (पश्यंति) स्थान से नीचे करके (परा) से "अहं" और (पश्यंति) से "ब्रह्मास्मि" का विकल्प फिर (परा) से "अहं" (पश्यंति) से "ब्रह्मास्मि" पुनः पुनः मालाकार रूप स्मर्ण करे जोकि मन (परा) (पश्यंति) के मध्य गमन करते हुये अपने मार्ग से विस्मृत और हृदयगत पूरा तीन संस्कार वासना कषायों का लेश भी त्याग कर निर्विकार शुद्ध हुआ ब्रह्म आत्म शब्द में रागी हो। फिर कालान्तर में वह मन अपने संकल्प रूप विकल्प स्वभाव को त्याग कर प्रपच के संस्कार रहित आत्मा से भिन्न ब्रह्म शब्द को भी त्याग कर "अहमस्मि" में रागी हुआ फिर निराकार निर्विकार "अहमस्मि" विकल्प से रहित अनिर्वाच्य आत्मानन्द के अब्धिरूप में तिष्ठित होता है जल लवणवत्

एक रूप हो जाता है ॥ फिर सत्य असत्य का ग्राही कौन है ॥ सो कहा है एक दोहा में—

दो-जैसे पुतरी लौण की, दधिथाहत गली जाय॥
तेवों आत्म के खोजते, शुद्धि बुद्धि जात हेराय ॥ ११ ॥

फिर जगत् के अदृष्टिता में कहा है श्लो—

निराधारा निर्विकारा यदा तिष्ठति मध्यगम् ॥
आनन्दाब्धौ तदामग्नो जगाद्दष्टि अहर्निशम् ॥१२॥

अर्थ--(परा) स्थान से जो वृति (अहं) शब्द के आधार से (पश्यन्ति) स्थान में (ब्रह्मास्मि) का विकल्प करती थी सो, जिस काल में (अहं) आधार से रहित होकर (ब्रह्मास्मि विकल्प रूप विकार को त्याग कर जल लौण के सम ब्रह्माकारता से हृदय मध्य गत निष्ठित होती है। तब आत्मानन्द रूप अब्धि में मग्न हुआ अहो रात्र जगत् की अदृष्टि होती है ॥ यह सप्तम भूमिका की दशा है ॥२॥

सो मुक्ति कोपनिषद् से सिद्ध है—

श्रु-"प्रशान्त बृतिकं चित्तं परमानन्द दायकम् ॥
असंप्रज्ञातनामायंसमाधिर्योगिनांप्रियेः"॥ १३ ॥

अर्थ—शान्त वृति वाला चित्त परम आनन्द का दाता होता है। यह (असंप्रज्ञात नाम निर्विकल्प समाधि योगिओं को अति प्रिय है ॥१३॥

श्रु-"प्रभाशून्यं मनः शून्यं बुद्दि शून्यं चिदात्मकम् ॥ अतद्याबृत्ति रूपोऽसौ समाधिर्मुनि भावितः" ॥ १४ ॥

अर्थ—प्रभा से शून्य मन से शून्य बुद्धि से शून्य चैतन्य स्वरूप (अतद्याव बृति) तत्व से रहित जगत् तिस जगत् के (व्यावृत) नाम दूर कर नेवाली यह निर्विकल्पसमाधि योगिओं के मन भावित है ॥१४॥

श्रु-"ऊर्ध्वपूर्णमधः पूर्णं मध्य पूर्ण शिवात्मकम् ॥
साक्षाद्विधि मुखो ह्येष समाधिः परमार्थिक"॥१५॥

अर्थ – यह समाधि ऊपर से भी पूर्ण है, मध्य से भी पूर्ण है, नीचे से भी पूर्ण है, और कल्याण रूप यह समाधि "नेह नाना रूप जगत् किंचित् नहीं है ॥ ऐसे निषेद्ध श्रुतिओं से और "नित्यं विभु सर्व गतं सुसुक्ष्मं तदव्ययं तद्भूत योनिं परिपश्यन्तिधारी" यह समाधि रूप ब्रह्म नित्य है, व्यापक है, सर्वगत है सुक्ष्म से भी सुक्ष्म है, अव्यक्त है, भूतों को योनि है, इसको धीरपुरुष देखते हैं ॥ ऐसे साक्षात् विधि मुख श्रुतियों से प्रतिपादित यह समाधि परमार्थिक है ॥१५॥

इस प्रकार के यत्न अभ्यास से मनो नाश वासना क्षय हुये संसार स्वप्न-वत् प्रतीत और आनन्द अवधि की भानता हुये दृष्ट दुःख का अभाव होता है ॥

सो दृष्ट दुःख के अभावता में गौड पादाचार्य जी ने कहा है—

श्लो–उत्सेक उदधेर्यद्वत्कुशाग्रेणैक बिन्दुना ॥

मनसोनिग्रहस्तद्वद्भवेदपरिखेदतः ॥ १६ ॥

अर्थ—जैसे कुशातृण के अग्र भाग से एक २ विन्दु कर के समुन्द्र सुखाने में जितनी समय और परिश्रम है। तैसे ही मन के निग्रह करने में परिश्रम होता है। तब मन खेद रहित आनन्द आत्मा के रूपता को प्राप्त होता है ॥१६॥

शं–आप का समुद्र सोखन दृष्टान्त ही असंभव है। फिर मन का निग्रह रूप दृष्टान्त कैसे संभव होगा।

उ–जैसे उपाय कर के पुराण उक्त कथा है कि टीटी एक पक्षी ने समुन्द्र को सुखा दिया है। तैसे उपाय से मन भी निग्रह हो सक्ता है, सो श्लोक से गौड़ पादाचार्य जी ने कहा है—

श्लो–उपायेननिगृह्णीयात् विक्षिप्तं काम भोगयोः ॥

सुप्रसन्नं लये चैव यथा कामोलयस्तथा ॥१७॥

अर्थ—(काम) इच्छा भोगों से चञ्चल मन उपाय कर के निग्रह होता है। सो उपाय (७) सप्तम श्लोक (दुःख सर्व मनु स्मृत्य) में और अभ्यास की प्रक्रिया में कह आये हैं ॥

शं–सुषुप्ति अवस्था में चित्त लयता को प्राप्त होता है, फिर वह चित्त क्यों न प्रसन्नता को प्राप्त हो ॥

उ–न–जैसा चित्त काम भोगों से चञ्चलता रूप के अशान्त है, तैसे ही सुषुप्ति में लय हुआ चित्त काम भोगों के वासना रूप बीज को लेकर स्थित है। और जाग्रत में उसी वासनाओं से फिर चञ्चल होता है। इस हेतु से निगृहित चित्तलय से विलक्षण है" और वही चित्त आनन्द और शान्त रूप है ॥१७॥

फिर वह आनन्द और शान्ति बहुत बचन से कथन नहीं है, वाक्य का अविषय होने से। सो श्रुति प्रमाण है—

श्रु—"यद्वाचानिवर्तन्तेअप्राप्यमनसासह ॥
आनन्दो ब्रह्मणोविद्वान्नविभेतिकदाचन" ॥१९॥

अर्थ—जिस से वाणी निवर्त है, और मन के सहित पञ्चज्ञान इन्द्रियां जिसको अप्राप्त है, तिस आनन्द रूप ब्रह्म को जानने वाले विद्वान महा पुरुष किंचित् जन्म मरण के भय को नहीं प्राप्त होते हैं ।।१८।।

फिर वह आनन्द कैसे ज्ञात है—

श्रु—नाहं मन्येसुवेदेतिनोनवेदेतिवेद च ॥
योनस्तद्वेदेतद्वेदनोनवेदेतिवेद च ॥२०॥

अर्थ—यदि ऐसा कहैं कि मैं जानता हूं, तो भी नहीं जानता ज्ञान की विषय जड़ होने से, और यदि ऐसा कहैं कि मैं नहीं जानता तौ भी निज आत्मा को जानते हुये (न वेद) नहीं जानता हूं ऐसा कथन असत्य है। इस हेतु से मैं ऐसा नहीं मानता हूं कि मैं जानता हूं, और अपने प्रति अज्ञात भी नहीं मानतां हूं। किन्तु जो पुरुष मेरे सदृश्य जानते हैं, वही पुरुष आत्मा को जानते हैं ।।१६।।

इति श्री मत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री सरजू पारगत मभवली
राजधानी से पञ्चकोश नैऋत में श्री सरजू के तट वरहज
नग्रनिवासी श्री १०८ श्री स्वामी अनन्त जी पूज्यपाद
का अल्पज्ञ शिष्य स्वामी उमानन्द कृत वेदान्त
मुक्तावली बालबोधनी पददीपिका भाषा
भाष्यगत क्षेपक त्रितीय भाग
अभ्यासन विधि समाप्तः
।। इति ।।

ॐ

॥ उपासनाकांड ॥

॥ निर्गुण उपासना अहंग्रह रूप ॥

॥ मङ्गलाचरणं ॥

गुरु अनन्तं नमः कृत्वा परमानन्द दायकम् ।
उपासनं कथिष्यामि मन्दानां हित कामया ॥१॥

जो प्रक्रया अभ्यासन विधि में अभ्यास को कहा है वही प्रक्रया उत्तम उपासना के अधिकारी (ॐकार) के उपासना में भी कर सक्के हैं ॥

सो यह है कि पूर्व उक्त विवेचन करके (ॐकार) के साथ सर्व का अभेद करके (ॐकार) को अपना स्वरूप ज्ञान कर (ओ) शब्द को पूर्व उकचार स्थान रूपचार बाणी में से एक बाणी से ग्रहण कर दूसरे बाणी से (म) को ग्रहण कर (ओ३म्) शब्द पूरा करके पुनः पुनः पूर्व उक्त अभ्यासवत् चारों बाणी के द्वारा कर्म कर्म से अभ्यास कर ज्ञान प्राप्ति द्वारा वह उपासक भी (आनन्द अब्धि) को प्राप्तकर सक्का है ॥

सो (पंचीकरण) के द्वारा विस्तार से (निर्गुण) अभेद उपासना और (सगुण) अभेद उपासना (भक्ति) का निरूपण फलके सहित स्वनुभव के द्वारा श्रुति स्मृति युक्ति प्रमाणों करके सिद्ध करता हूं ॥

ओंकार की उत्पति ।

तिसमें प्रथम (ओ३म्) शब्द का उत्पति कहते हैं । (ओ३म्) शब्द ब्रह्म का वाचक है । ब्रह्म अखण्ड शान्त बोध अचलरूप है । और अजर (एक रस) अमर है । सर्व व्यापक निराकार ज्ञान स्वरूप है । उस ब्रह्म में सृष्टि से प्रथम स्फुरणता रूप माया, शक्ति की उत्पति होती भई, जैसे समुन्द्र से लहर की । उत्पति है । उस स्फुरणता रूप माया की आदि उत्पति में (अ) वर्ण का उच्चारण होता भया और रूप माया की उसके मध्यमें (उ) वर्णकी उत्पति होती भई, और स्फुरणता रूपमाया के समाप्ति पर (म) वर्णकी उत्पति होती भई और अर्द्ध विन्दु (ँ) उस स्फुरणता रूप माया में ज्ञान सत्ता है । और (शब्द) उसमें शक्ति है । सर्व सृष्टि से प्रथम ब्रह्म से (ओ३म्) शब्द की उत्पत्ति होती भई । इस हेतु से (ओ३म्) शब्द के उपासना अभ्यास से जीव बहुत शीघ्र ही ब्रह्म को प्राप्त होता है । जहां तक स्फुरणता रूप माया की लहर उठी है, तहां ही एक विराट (ब्रह्मांड) की अवधि है । ब्रह्म की उस स्फुरणतां रूप माया को (हिरण्य गर्भ) कहते हैं । स्वर्ण का रंग होने से (हिरण्य) कहा है । और चन्द्र सूर्य्य तारागण सर्व लोक उसके अन्तर भूत होने से (गर्भ) कहा है । और दोनों पदों के समास से

(हिरण्य गर्भ) कहा हैं। और उसकी स्फुरणता रुप मंया के अवयि प्रयत्न (अ-उ-म) तीनों अक्षर शब्द रुप से व्यापक हैं। (ओ३म्) शब्द के अन्तर समस्त (ब्रह्मांड) की स्थिति है। जो पुरुष शुद्ध चित्त होकर (ओ३म् का उच्चारण और ध्यान करे उसके ध्यान में संपूर्ण (हिरण्य गर्भ) आ जाता है। जैसे पीपल के बीज में पीपल का वृक्ष स्थित है। जब बीज का आवरण दूर होता है। तब समस्त वृक्ष फल फूल पत्ता शाख आदि प्रगट होते हैं। तैसे ही (ओ३म्) शब्द के अभ्यास करने से जब अन्तःकरण का मैल रुप पाप चंचलता निवृत् होता है तब समस्त (ब्रह्मांड) प्रत्यक्ष रुप से प्रगट होता है॥

इस उपासना और पूर्व उक्त अभ्यासन विधि और योग रहस्य और निर्विकल्प समाधि में चार ४) दोष (लय) नाम निद्रा तन्द्रा में लीन होना १ और (विक्षेप) अभ्यास के समय अन्य देशों वा अन्य विषयों में चित्त की चञ्चलता २ और (कषाय) अभ्यास के समय में जो शत्रु मित्रों में राग द्वेष का सूक्ष्म संस्कार अन्तःकरण से उत्पन्न होना ३ और (रसा स्वाद) दोष निर्विकल्प (समाधि में तीनों दोषों के साथ वर्जित है। सो यह है कि मूर्ति का ध्यान वा त्रिपुटी का आनन्द ४। तिसमें इतना भेद है कि (अहंब्रह्मास्मि) वाक्य का अभ्यासी पुरुष तिन दोषों के साथ मूर्ति ध्यान और ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय (त्रिपुटी) को भी त्याग का यत्न करे और निर्गुण उपासक और योग्य रहस्य की मूर्ति के ध्यान का आनन्द त्याग करें और सगुण उपासक (भक्त) तीन दोषों को निवृत् करके मानसीक मूर्ति के ध्यान का आनन्द लेवें हैं उसको (रसास्वाद) दोषित नहीं है॥ सो उन चार (४) दोषों के निवारण की युक्ति यह हैं :—

"लय संबोधयेत् चित्तं विक्षिप्त समयेत्पुनः॥
सकषायं विजानियात्सम प्राप्तं न चालयेत्॥
नास्वादयेत्सुखं तत्र निः संग प्रज्ञया भवेत्" ॥

अर्थ—जब निद्रारूप (लय) दोष होवे तो चित्त को जगा कर फिर अभ्यास में लग जावे। और जब चित्त अन्य देशों वा अन्य विषयों में चंचल हो तब चित्त को बलात कार से फिर २ मोड़ कर अभ्यास में स्थित करे॥ और जब एकान्त पाकर चित्त में शत्रु मित्रों के स्मरण के द्वारा राग द्वेष उत्पन्न हो तो समदृष्टि सम बुद्धि करे अभ्यास से चलायमान न होने देवे और मूर्ति ध्यान वा त्रिपुटी के आनन्द से बुद्धि कर के वैराग करे नाम त्याग करे यह चार दोष और दोषों के निवारक हैं॥

॥ पञ्चीकारणम् ॥

मूल्य—अथात्परम हंसानां समाधि विधि व्याख्या सामहः॥

अर्थ—(अर्थात्) नाम श्रवण मनन निधिध्यासन के अनन्तर जो (परमहंसानां) परमहंसों के (समाधि) की (विधि) नाम प्रकार तिस का (व्याख्या) नाम व्याख्यान (सामह) नाम मैं करता हूं ॥

मूल्य—सत्शब्दवाच्यअविद्यासवलंब्रह्म, ब्रह्मणो अव्यक्तं, अव्यक्तात्महत्महतोअहंकारः, अहंकारात् पञ्चतन्मात्राणिपञ्चतन्मात्रेभ्यो पञ्चमहा भूतानिपञ्च महाभूतेभ्यो अखिलजगत् ॥१॥

अर्थ—"सदैव सोम्य इदमग्रासीत्" इस जगत् के सृष्टि के पहले हे शिष्य एक (सत्) ही था॥ तिस (सत्शब्द) का (वाच्य) नाम वाक्य अर्थ (अविद्या) नाम माया (सबल) नाम विशिष्ट (ब्रह्म) हुआ। तिस ब्रह्मणे) नाम ब्रह्म से (अव्यक्तं) नाम माया प्रगट हुई तिस (अव्यक्तात्) अव्यक्त से (महत्) नाम मन हुआ। तिस [महतो] महत से [अहंकारः) तिस [अहंकारात्] अहंकार से 'तस्माद्वा एतस्मात् आत्मनः आकाश संभूत्' मंत्र भाग से वो ब्राह्मण भाग से इस आत्मा के अहंकार से आकाश उत्पन्न होता भया॥ और "आकाशाद्वायु वायुरग्नेरग्नेरापरपां पृथ्वीं च उत्पद्यते" आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी उत्पन्न होती भई॥ इस प्रकार [पंचतन्मात्राणि] नाम पंच तन्मात्रा उत्पन्न हुये, और [पंच तन्मात्रेभ्यो] पंचतन्मात्रों कर के पंचीकृत [पंच महाभूतानि] पञ्च महाभूत होते भये, और पञ्चीकृत [पञ्चमहाभूतेभ्यो] पञ्च महाभूतो कर के [अखिलं] नाम समस्त [जगत्] उत्पन्न होता भया॥१॥

मूल्य—पंचानांभूतानांप्रत्येकैकंद्विधाविभज्य सार्द्ध भागंविहायअर्द्ध भागं चतुर्धाविभज्यएतरेषु योजीते पंचीकारणंमायारूपदर्शन मध्यारोपापवादाभ्यांनिस्प्र पंचंसप्रपंचते ॥ २ ॥

अर्थ—(पंचनां भूतानां) पांच भूतों में (प्रत्येकैकं) एक २ को दो २ भाग करके (सार्द्ध भागं) अपने २ आधे २ भाग को (विहाय) त्याग कर दूसरे अर्द्ध भाग को (चार २) भाग का (विभाग) करके अपने २ प्रथम अर्द्ध भाग को छोड़ कर (एतरेषु) अन्य के प्रथम अर्द्ध भाग में चार भाग में से एक २ भाग को (योजीते) जोड़ने से पंचीकरण होता है॥ यह प्रक्रया (माया रूप) माया के रूप दर्शाने के निमित (अध्यारोप) और (अपवादाभ्यां) अपवाद के द्वारा प्रपंच रहित आत्मा को प्रपंच के सहित किया जाता है॥ (सत्ये असत्यआरोपणम्) अध्यारोपः। सत्य वस्तु में असत्य का

आरोपण अध्यारोप है ॥ जैसे रज्जु में असत्य सर्प का आरोपण है। तैसे ही आत्म वस्तु में अज्ञानादि जगत् अवस्तु का आरोपण है ॥ और (रज्जुविवर्तस्य सर्पस्य रज्जु मात्रवद्वस्तु विवर्तस्य अवस्तुनो अज्ञाना देः वस्तु मात्रम्) अर्थ— रज्जु का विवर्त सर्प रज्जु का स्वरूप ही है। तिस के सम आत्म वस्तु का विवर्त अवस्तु अज्ञान और अज्ञान का कार्य जगत आत्म वस्तु का स्वरूप है। अर्थात् सत्य में असत्य भ्रम का त्याग और सत्य अधिष्ठान रज्जु आत्मा मात्र का ग्रहण अपवाद है ॥

मूल्य–ॐ पंचीकृत् पंच महाभूतानि तत्कार्यं सर्वं विराड इत्युच्यते एतत् स्थूलशरीरमात्मनः इन्द्रियार्थोपलब्धि जागरितं तदुभयाभिमान्यात्मा- विश्व एतत् त्रयमकारः ॥३॥

अर्थ—पंचीकरण किये हुये पंचमहा भूत और (तत्) तिनके कार्य चौदह भुवन (सर्व) स्थूल सृष्टि को (विराड) वैश्वानर नामक कहा जाता है। सो यह ही (विराड) आत्मा का स्थूल शरीर है। और नैत्रादिक इन्द्रियों से जो (अर्थ) विषयों की (उपलब्धि) प्रतीति सो जाग्रत् अवस्था है : और (तत्) तिस स्थूल और जागृरित् अवस्था (उभय) दोनों का अभिमानी आत्मा (विश्व) नाम वाला होता है । और (एतत्) यह स्थूल शरीर जागृरित अवस्था (विश्व) नामा जीवात्मा (त्रयं) तीनों (ॐकार) के प्रथम मात्रा (अकार) से स्वरूप ही हैं। अर्थात्—विश्वनामा जीवात्मा [वाच्य] नामी है, और अकार तिस (विश्व) का [वाचक] नाम है ? और स्थूल शरीर जागरित अवस्था आत्मा की उपाधि हैं ॥ ३ ॥

अथ द्वितीय शरीर और स्वप्न अवस्था और (तैजस) नामा जीवात्मा के स्वरूप का व्याख्यानकरता हूं ॥

मूल्य–ॐ अपंचीकृपंच महाभूतानि पंच तन्मा- त्राणि तत्कार्यं च पंच प्राणः दशेन्द्रियैः मन बुद्धिश्चेति सप्त दशकं लिङ्ग भवतिकं हिरण्य- गर्भत्युच्यते, एतत् सुक्ष्म शरीरमात्मनः करणषूप- संहृतेषु जागृत्संस्कार जः प्रत्यः स विषयः स्वप्नामित्युच्यते, तदुभयाभिमानी आत्मा तैजस, एतत् त्रयमुकारः ॥४॥

अर्थ-[अपंची कृत्] पंची करण से रहित पंच महा भूतों को ही [पंच तन्मात्रा] भी कहते हैं। सुक्ष्म रूप अदृश्य होने से। [तत्] तिन पंच भूतों के रजो गुण अंस का कार्य पंच प्राण और तिसी रजो गुणी एक २ भूतों का काय पंच कर्म इन्द्रियां और एक २ भूतों के सतो गुण अंश का कार्य पंच ज्ञान इन्द्रियां ये दस इन्द्रियां पंच प्राण पंद्रह [१५] और पञ्च भूतों के सतो गुण अंस का कार्य मन बुद्धि ये [सप्त दशकं] सतरह [१७] अव्यवों को लिङ्ग कहा है। यह भवतीक] नाम भूतों का कार्य भव तीक हिरण्य गर्भ नाम से उक्त है। [एतत्] यह आत्मा की सुक्ष्म शरीर है, और [करणेसु] नाम इन्द्रियों के [उपसंहृतेषु] अभाव हुये सोते समय जागरित के संस्कार से [जः] जाग्र मान जिस विषय प्रपंच की [प्रत्यः] प्रतीत वह विषय स्वप्न कहा गया है [तत्] तिस सूक्ष्म शरीर और स्वप्न अवस्था [उभय] दोनों का अभिमानी आत्मा [तैजस] नाम वाला होता है वहीं जाग्रत् का अभिमानी [विश्व) स्वप्न सुक्षम उपाधि करके । तैजस । होता भया और । एतत् । यह सुक्ष्म शरीर स्वप्न अवस्था और । तैजस नामा जीवात्मा । त्रयं । तीनों । ॐ कार । के द्वितीय मात्रा । उकार । के स्वरुपही हैं॥ अर्थात्। तैजस । नामा जीवात्मा । वाच्य । नामी है तिस नामी का । उकार । मात्रा । वाचक । नाम है और सुक्ष्म शरीर स्वप्न अवस्था उपाधि है ॥ ४॥

अब कारण शरीर सुषुप्ति अवस्था (प्राज्ञ) नामा जीव का व्याख्यान करता हूं ॥

मूल्य-ॐ शरीरद्वयकारणमात्माज्ञानं साभासाव्या कृतमित्युच्यते, एतत्कारणशरीरमात्मनः तच्चनसत्यं नासत्यंनापिसत्यासत्यं, नाभिन्नं नाभिन्नंनापिभिन्ना भिन्नं,कुतश्चित्ननिर्व्यवंनसाव्यवंनोभयं,किन्तुब्रह्मात्मैकत्वज्ञानोपनोदम्.सर्वप्रकारज्ञानोपसंहारेबुद्धेःका रणात्मनावस्थानंशुषुप्तिततउभयाभिमानी आत्मा प्राज्ञ, एततत्रयंमकारः ॥५॥

अर्थ-स्थूल और सुक्ष्म दो शरीरों का कारणभूत [आत्मा ज्ञानं] स्वस्वरूप आत्मानन्द का अज्ञान, सो अज्ञान [साभास] चैतन्य आत्मा के आभास [प्रतिबिंब] के सहित [अव्याकृत] कहा है, [एतत्] यह ही आत्मा की कारण शरीर है, सो अज्ञान रूप कारण शरीर न सत्य है, न असत्य है, न सत्य असत्य उभय रूप है। और न आत्मा से भिन्न है, न अभिन्न है, न भिन्न अभिन्न उभय रूप है। और न [निर्व्यव] व्यक्ति से रहित है, न व्यक्ति के सहित है, न

उभय रूप है ॥ किन्तु [ब्रह्मआत्मा] के एकत्व का जो ज्ञान, तिस ज्ञान को आवृत् करने वाली है, और जब सर्व प्रकार के ज्ञान का अभाव होता है, तब बुद्धि [कारणात्मनावस्थानं] कारण अज्ञान के स्वरूप से तिष्ठित होती है, उसको शुषुप्ति कहते हैं। तिस कारण शरीर और शुषुप्ति अवस्था का अभिमानी वही स्वप्न का अभिमानी [तैजस] [प्राज्ञ] नामा जीव होता है, सो [एतत्] यह कारण शरीर शुषुप्ति अवस्था [प्राज्ञ] नामा जीवात्मा तीनों [ओंकार] का त्रितीय मात्रा [मकार] के स्वरूप हैं ॥ अर्थात् प्राज्ञ नामा जीवात्मा [वाच्य] नामी का [मकार] मात्रा [वाचक] नाम हैं" और कारण शरीर शुषुप्ति अवस्था उपाधि हैं ॥

फिर जैसे एक वाचक रुप [ओंकार] मात्रा उपाधि से [अकार। उकार। मकार] तीन रुप कहता है, तैसे एक वाच्य रुप [शरीरादि उपाधि कर के [विश्व। तैजस। प्राज्ञ] तीन रुप कहता है ॥

फिर जैसे [आकार। उकार] दोमात्राओं का कारण भूत [मकार] की विलिनता एक [ओंकार] में हुये कार्यरुप [अकार। उकार] दोनों मात्राओं की विलिनता हुये एक [ओंकार] ही अमात्ररुप अनिर्वाच्य अवशेष है। तैसे ही दो शरीर स्थूल सुक्ष्म का कारण भूत [आत्मा का अज्ञान] तिस को आत्मस्वरुप में विलिन हुये अज्ञान विशिष्ट [प्राज्ञ] रुपता आत्मा की निवृन हुये, कार्य रुप स्थूल सुक्ष्म शरीरों की विलिनता हुये, तिन शरीरों से विशिष्ट आत्मा की [विश्व] रुपता और [तैजस] रुपता की निवृति हुये त्रितीयत्व का अभाव [आत्मा] मात्र ही शुद्ध अनिर्वाच्य अवशेष है ॥

इस प्रकार उपासक पुरुष [ओंकार] और [आत्मा को एक सम विशिष्टता और विशेषणता और शुद्धता में विचार करके "ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं" ओंइम् ऐसा जो अक्षर सोई यह सर्व चराचर जगत् है ॥ 'भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वं ओंकार एव' भूत भविष्य वर्तमान यह तीनों काल अन्तर गत सर्व ओंकार ही हैं ॥ "यच्चान्यत त्रिकालातीतं तदपि ओंकार एव" जो तीनों काल से अतीत ईश्वर सो भी ओंकार ही हैं ॥ "सर्वंह्येतद्ब्रह्म" यह सर्व जगत रुप ओंकार ब्रह्म है ॥ इन श्रुतियों से सर्व रुप ओंकार है सो सर्व रुपता आगे कोष्टों में देखाया है, सो ओंकार सर्व रुप ब्रह्म का [वाचक] ब्रह्म रुप है " सर्वं खलुमिदं ब्रह्म" यह सर्व निश्चय कर ब्रह्म रूप हैं ॥ इस श्रुति से सर्व रुप ब्रह्म ही है। "अयमात्मा ब्रह्म" यह आत्मा ही ब्रह्महैं। एतदात्मायंसर्वं" यह आत्माहीं यह सर्व है ॥ इन श्रुतियों से आत्मा की ब्रह्म रुपता और सर्व रुपता सिद्ध है ॥

इस हेतु से ब्रह्म का वाचक जो [ओंकार] सो आत्मा ही का वाचक है, तिस [ओंकार] में पूर्व प्रकार एक २ मात्राओं में एक २ शरीर अवस्था और शरीरादि के अभिमानी [विश्वादि] की विलिनता रुप अभेद करके पश्चात् —

मूल्य—आकार उकारे उकारो मकारो ओंकारे ओंकारो अहमेव ।

अर्थ—[अकार] मात्रा को [उकार] में विलय करे और उकार के [मकार] में, मकार को [ओंकार] में, और ओंकार को [अहमेव] निजस्वरूप आत्मा रूप जानकर जो अपने (अहं) समान स्वरूप को कदाचित नहीं भूलता है। तैसे ही (ओंकार) निज स्वरुप को प्रातः। जाग्रत से सायमकाल सैन प्रयंत अनन्य भाव से स्मरण करता रहै और एकान्त देश निरजन स्थान को प्राप्त होकर दीर्घ स्वर से नाम उंचे स्वर से [ओंकार] को घंटा नाद के सम उच्चारण करे, सो अनन्यता भाव यह है [यस्य मनसः गति अन्येन विद्यते स अनन्यः] जिसके मन को गति अन्य भाव में न विद्यमान हो वह अनन्य कहे जाते हैं ॥ इस प्रकार निज स्वरुप [ओंकार] को सारा ससार रूप देखने से अन्य द्वैत भाव के अभाव होने से जहां जहाँ मन जाता भी है, तहां २ सर्व [ओंकार] रूप होने से सदा अनन्यता ही है। इस प्रकार :—

"नवांणीमवसरंदद्यात्कामादिंन्मनागपि ॥
आसुप्तेआमृतेकालंनयेत् ओंकारचिन्तया" ॥१॥

अर्थ—वांणी को [ओंकार] से अतिरिक्त अनात्म शब्दों के उच्चारण का अवसर न देना चाहिये। और मन को भी [ओंकार] से अतिरिक्त काम क्रोधादिकों में जाने का अवसर न देना चाहिये ॥ जाग्रत् से सैन प्रयन्त और जन्म से मरण प्रयन्तकाल [ओंकार] के चिन्ता को प्राप्त होवे ॥ इहां मूल्य में [वेदान्त] के स्थान में अवसर संगीत को पाकर (ओंकार) शब्द रखा है ॥

इस [ओंकार] के निर्गुण उपासना विशेष कोई साधन और नियम का अपेक्षा नहीं है। मात्र अल्प भोजन से ही अल्प निद्रादि हो जाती है, और एकान्त वास से शब्दादि विषयों के संसर्गता का अभाव हो जाता है। और [ओंकार] में सदा अनन्यता के हुये अनियमता असाधनता का अभाव हुये नियम और साधन भूषण के सम अनायास हो वर्तता है। मात्र दो साधन अल्प भोजन एकान्त वास संपादन करके सदा [ओंकार] में मगन रहे, फिर इस प्रकार के [ओंकार] के उपासना का फल "मांडूक उपनिषद्" में विस्तार से कहा है, सो फल संक्षेप रीति से दिखाता हूं ॥

"जाग्रितस्थानो वैश्वानरोऽकारः प्रथमा मात्रा आप्तेरादिमत्वाद् वाऽऽप्नोतिहवैसर्वान् कामनादिश्चभवति य एवं वेद ॥"

अर्थ—जाग्रित् अवस्था स्थूल देह का अभिमानी विश्व रुप वैस्वानर है, और (ओंकार) का प्रथम मात्रा अकार है, सो दोनों को आदि वाला होने से स्वप्न सुषुप्ति अवस्था और सुक्ष्म कारण शरीर। में वैश्वानर की ही व्याप्ति है, सो स्थूल सृष्टि के विवरण में कह आये हैं और उकार मकार में अकार की व्याप्ति है। फिर इस प्रकार वैश्वानर और आकार के व्याप्तिपना आदि पना के एक समता होने से वैश्वानर अकार का स्वरूप है, जो उपासक इस प्रकार जानते हैं, वह पुरुष संसार में जो कामना करते हैं, वा ब्रह्मलोक की कामना करते हैं, सो सर्व की प्राप्ति निश्चय होती है ॥ १ ॥

"स्वप्नस्थानस्तैजसउकारोद्वितीयामात्रोत्कर्षादुभयत्वाद्वोत्कर्षति ह वै ज्ञान संततिं समानश्चभवति नास्याब्रह्मवित्कुले भवति य एवं वेद।"

अर्थ—स्वप्न अवस्था सुक्ष्म शरीर का अभिमानी तैजस है, और (ओंकार) का द्वितीया मात्रा उकार है, सो दोनों को द्वितीयापना होने से उत्तम हैं, क्योंकि (तैजस) विश्वप्राज्ञ के मध्य स्थित दोनों का संबंधी होने से उत्तम है। और (उकार) अकार मकार के मध्य स्थित दोनों का संबंधी होने से उत्तम है। इस प्रकार दोनों के एक समता हुये तैजस उकार का स्वरुप है, जो उपासक ऐसा जानते हैं, उनके कुल में अज्ञानी संतान की उत्पति नही होती है, किन्तु निश्चयकर शत्रु मित्र को एक सम देखने वाला ज्ञानावान संतति उत्पन्न होते हैं ॥ १ ॥

"सुषुप्तस्थानः प्राज्ञोमकारः त्रितीयामात्रा मीतेरपीतेर्वामीनोति ह वा इदं सर्वमपीतिश्चभवति एवं वेद" ॥

अर्थ सुषुप्ति अवस्था कारण शरीर का अभिमानी प्राज्ञ नाम जीव है और (ओंकार) का त्रितीय मात्रा मकार है, सो (प्राज्ञ नामा जीव) विश्व तैजस नामा जीव का नाम है कि विश्व तैजस को अपने २ अवस्था पर तौल से रखता है दोनों को घटने बढ़ने नहीं देता है, और विश्व तैजस की विलिनता रुप से (प्राज्ञ) को है। तैसेही (मकार) भी अकार उकार का तौल है। अकार (उकार) को तौल पर रखता है, स्वर में घटने बढ़ने नहीं देता है, और (ओंकार) के घंटा नाद रुप उचारण समय अकार की विलिनता उकार में होकर शनैः शनैः उकार की विलिनता मकार में होकर (ओंकार) शब्द होता है, इस हेतु से अकार उकार की विलिनता रुप प्राप्त भी मकार को है। इस प्रकार (प्रज्ञा) और (मकार) दोनों को त्रितीयपना और माप पना और लय स्थानपना सम होने से (प्राज्ञ) मकार का स्वरूप है। जो उपासक इस

प्रकार जानते हैं, उस पुरुष को सर्वज्ञतादि ईश्वर्यता की निश्चय कर प्राप्ति होती है ॥१॥

इस प्रकार (ओंकार) के उपासक (अहंग्रहरूप) उपासना करते हुये कदाचित् इस लोक के भोगों के बासना उत्पन्न हुये योग भ्रष्ट हुआ ज्ञानवान कुल वा राज कुल वा श्रीमान कूल में उत्पन्न होकर इच्छित भोगों को भोग कर फिर उपासना द्वारा ज्ञान को प्राप्त हो मुक्त हो जाते हैं ।। यदि ब्रह्म लोक के भोगों की कामना हुई, तो ब्रह्म लोक को प्राप्त होकर ब्रह्माजी के साथ भोगों को भोग कर ब्रह्मा जी के उपदेश से ज्ञान प्राप्ति कर ब्रह्मा जी के साथ मुक्त हो जाते हैं । यदि भोगों के इच्छा से रहित मोक्ष कामना से ही (ओंकार) का उपासना करते हैं तो इसका फल यह है—

"अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहारियः प्रपंचोपशमःशिवोऽद्वैतः एवं ओंकार आत्मैव संविशत्यात्मनाऽऽत्मानं य एवं वेद य एवं वेद" ॥१॥

अर्थ—चतुर्था अकार उकार मकार मात्रावों से रहित (अमात्र) है, जो उपदेशादि व्यवहार से रहित प्रपंच जगत् का लय स्थान है ।
और (शिव) कल्याण रूप अद्वितीय तुरीया अनिर्वाच्य ब्रह्म रूप आत्मा है, जो उपासक इस प्रकार (ओंकार) को जानते हैं, वह उपासक इस लोक में इसही शरीर में ब्रह्म आत्मा की एकता के ज्ञान द्वारा अपने आत्म स्वरूप में ही अपने अन्तःकरण के पुरुषार्थ से अपने आत्म स्वरूप को प्रवेश करते हैं ॥ अर्थात् स्वत्वरूप की प्राप्तिरूप मोक्ष को पाते हैं ॥ १ ॥

फिर यही ब्रह्म रूप (ओंकार) से अभिन्न आत्मा जो पूर्व में (अहं) रूप कहा है, सो—

ॐअहमात्मासाक्षीकेवलचिन्मात्रस्वरूपः नाज्ञानं नापितत्कार्यंकिन्तुनित्यशुद्धबुद्धमुक्तसत्यस्वभावं परमानन्दाद्वैयंप्रत्यक्भूतचैतन्यमहं ब्रह्मास्मिइतिअभेदेनावस्थानं समाधिः ॥६॥

अर्थ—(अहं) मैं आत्मा सर्व का साक्षी द्रष्टा केवल चित्त मात्रा ही स्वरूप है मेरा, न अज्ञान मेरे में है, न अज्ञान का कार्य मेरे में है, क्रिन्तु मैं नित्य शुद्ध ज्ञानस्वरूप मुक्त स्वरूप सत्य स्वभाव परम आनन्द स्वरूप एक अद्वितीय सर्व व्यापी प्रत्येक आत्मा चैतन्य रूप ब्रह्म मैं हूं, इस प्रकार दृढ संशय विपर्यय से रहित निश्चलता रूप (अहं ब्रह्मास्मि) ऐसी अभेदस्थिति रूप समाधि हो जाती है ॥ यही परम हन्सो की समाधि है ॥ १ ॥

क्योंकि (सम्यक् प्रकारेण साधयति इतिसमाधिः) भली प्रकार से साधे वही समाधि है ॥ सो यह ब्रह्म आत्मा को एकता भली प्रकार से सिद्ध है ॥ वा (समाधियते यस्मिन्नेति समाधि) जिस में चित्त की दृढ़ समाधान रूप स्थिति हो वह समाधि हैं ।॥ सो इस अभेद में चित्त की वृत्ति दृढ़ स्थिति है ॥ वा (पक्षे साधनेन साध्यं साधयति इति) समाधि, पक्ष में साधनों करके साध्य को साधे वह समाधि है ॥ सो आत्मा ॥ रूपी पक्ष में आनन्द रूपी साध परम प्रेम की विषयता रूप साधन से साधा जाता है, तथा—[आत्मानन्द रूपः परम प्रेमास्पदत्वात्] आत्मा आनन्द रूप है परम प्रेम का विषय होने से [यतनैवंतत्नैवंयथापुत्रादिकं]• जो आनन्द रुप नहीं है, वह परम प्रेम का विषय भो है, जैसे पुत्रादिक आनन्द रूप नहीं है, तो परम प्रेम का विषय भा नहीं है ॥ इस प्रकार प्रत्यक्ष अनुमान से सिद्ध समाधि यही है । क्योंकि (यत्र यत्र मनो जाति तत्र तत्र समाधि) ऐसा सर्व की एक रूप के दृढ़ हुये, जहां जहां मन जाता है वहां वहां समाधि ही है ॥ क्योंकि एक भाव में स्थिति को ही समाधि कहा है । और जो समाधि का आनन्द कहा है, सो आनन्द आत्मानन्द ही है, फिर सर्व आत्म दृष्टि हुए सदा समाधि का आत्मानन्द भान है ॥ इस प्रकार मध्यम मोक्ष के अधिकारी के रक्षा के निमित्त (ओंकार) के निर्गुण उपासना द्वारा मोक्ष की प्राप्ति रूप मुख्य फल कहा और वान्तर फल भी कामनादियों की प्राप्ति कहा है ॥

अब उपासना के कनिष्ठ अधिकारियों के रक्षा के निमित सगुण उपासना कहते हैं, जिसको भक्ति भी भक्त जन कहा करते हैं—

श्लो-निर्विशेषंपरंब्रह्मसाक्षात्करतुमनिश्वरा ॥
येमन्दास्तेअनुकंपन्तेसविशेषनिरूपणैः ॥१॥

अर्थ—विशेषता रहित निर्गुण परे ब्रह्म को साक्षात्कार करने में जे मन्द बुद्धि असमर्थ हैं, तिनके रक्षा के निमित् आचार्यों ने सविशेष सगुण रूपता का निरूपण किये हैं ॥ १ ॥

श्लो-वशीकृत्यमनस्येषांसगुणब्रह्मसिलनात् ॥
तदेवाविर्भवेत्साक्षादपेतोपाधिकल्पनं ॥१॥

अर्थ—इस सगुण विष्णु शिवादि के अहंग्रह उपासना के अभ्यास से मन को वश कर (उपास) नाम स्वामो के तदाकार करने से वही निर्गुण ब्रह्म कल्पित नाम रूप उपाधि के सहित चतुर्भुजादि रूपसे प्राप्त हुआ साक्षात्कारता से प्रगट होकर इच्छित फल का दाता होता है ॥ १ ॥

परन्तु इसमें एतना भेद है, कि यदि (प्रत्येकरूप) भेद भाव से उपासता है, और लोक लोकान्तर को विषयों का इच्छा है, तव तो यह उपासना जन्म

मरण के फल का दाता होते हुये, इच्छित फल को देता है, क्योंकि ऐसा ही श्रुति स्मृति कहती हैं—

स्मृति—यंयंवापिस्मरणभावंत्यजत्यन्तेकलेवरम्॥ तंतमेवैतिकौन्तेयसदातद्भावभावितः ॥१॥

अर्थ—हे अर्जुन जिस स्वरूप को भाव को प्राप्त हुआ स्मरण करते हुये अन्त में शरीर को त्यागता है तिस भाव से भावित पुरुष तिसी ही २ स्वरूपादि को प्राप्त होता है ॥ १ ॥

श्रु—'यंयंलोकंमनसासंविभातिविशुद्धसत्वःकामयतेयांश्चकामानतंतंलोकंजायते तांश्चकामानूतस्मादात्मज्ञंह्यर्चयेतूभूतिकामः"॥१॥

अर्थ—शुद्ध अन्तःकरण के प्रति जिस २ लोक और जिस २ कामनाओं को मन करके इच्छता है, जिस २ लोक को जाकर तिन २ कामना भोगों को प्राप्त होता है, तिस कारण से आत्म वेता पुरुष सर्व कामना विभूतियें को अर्पण कर देते हैं ॥ अर्थात् त्याग देते हैं ॥ १ ॥

भाव कहने का यह कि "द्वितीयादेव भयं भवति" जब तक द्वयत भाव से स्वामी सेवक भाव है तब तक द्वयतरूपता से जन्म मरण का भय विद्यमान हैं ॥ परन्तु इसमें भी इतना भेद है, कि जिसको कामनायें हैं, उसको तो सदा भय है, और जिसे कामनायें नहीं हैं। किन्तु अज्ञानता से द्वयत बुद्धि से मोक्ष कामना करके स्वामी सेवक भाव से उपासता है, उसको परम्परा से मोक्ष की प्राप्ति है। परम्परा यह है, कि काल पाकर निस्कामता ईश्वर के आराधना से अन्तःकरण की शुद्धि, तिस अन्तः करण में निर्गुण का अभेद उपासना, तिससे ज्ञान की प्राप्ति, तिस ज्ञान से मुक्ति होती है। क्योंकि 'ऋते ज्ञानानैव मुक्ति" बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं है ॥ इस श्रुति से परम्परा द्वारा ज्ञानहीं से मुक्ति है ॥ वा स्वामी के लोक को प्राप्त हो कर उनके उपदेश से मुक्ति है ॥

प्र०—इस भेद भाव के उपासना और निर्गुण उपासना दोनों का फल ज्ञान है, और ज्ञान से मोक्ष है, फिर निर्गुण अभेद उपासना और भेद उपासना में विशेषता क्या है, कि आप का निर्गुण अभेद उपासना पर अति आग्रह है ॥

उ०—इस में विशेषता यह है, कि अभेद उपासनो में अनन्यता के हुये साक्षात् ज्ञान की प्राप्ति है, और भेद उपासना में अनन्यता के अभाव से अभेद उपासना के द्वारा ज्ञान की प्राप्ति है ॥ क्योंकि अन्य के अभाव ही से अनन्यता होती है, सो भेद उपासना में अन्यरूप द्वयत के विद्य-

मानता से अनन्यता का अभाव है, सोई अनन्य उपासना ज्ञान का साधन है। तथा देश परिच्छेद काल परिच्छेद वस्तु परिच्छेद इन तीनों परिच्छेद से रहित परमात्मा है, तिस परमात्मा के यथार्थ स्वरुप का ही उपासना उत्तम फल मोक्ष का दाता है। और जब भेद भाव है तब आप दास रूप से भिन्न परमात्म को करके अपने देश में परमात्मा का नाश किया और जब परमात्मा से मन वृति को मोड़ कर (दासोहं) वृति किया तिस काल में परमात्मा का नाश किया, और भेद बुद्धि से अपने स्वामी से अन्य को स्वामी रुप नहीं मानता तब उस मूर्ति रुप वस्तु में अपने स्वामी का नाश किया, इस हेतुओं से अनन्यता का अभाव है, और भक्त बनते हुये अपने स्वामी का नाश आप करता है, फिर वह भक्त उपासक नहीं है। किन्तु ईश्वर धंशी नास्तिक है, सो गीता में भगवान् ने कहा है।

श्लो—योमांपश्यतिसर्वत्रसर्वंचमईपश्यति ॥
तस्याहंनप्रणश्यामिसचमेनप्रणश्यति ॥१॥

अर्थ—यो भक्त मेरे को सर्व काल वस्तु देश में देखता है, और अधिष्ठान रुपता से मेरे में सर्व को देखता है। तिस भक्त का नाश मैं नहीं करता हूं, न मेरा नाश वह भक्त करता है॥ अर्थात् जो भक्त परमात्मा को सर्व व्यापी नहीं देखता वह परमात्मा का नाशक है, फिर परमात्मा भी उसका नाश करता है। अर्थात जो गति नास्तिकों को देता है, वही गति उस भक्त की भी होती है॥ १॥

और जो भेद भक्त की परम्परा करके मुक्ति कहा है, सो ऐसी वह भेद भक्ति का कर्ता नहीं है, किन्तु सदगुरु के उपदेश से परोक्ष अभेद रुपता को जानते हुये, संशय विपर्यय रहित अपरोक्ष दृढ़ निश्चय के निमित सर्व व्यापी आत्मा रूप ब्रह्म को उपासना के हेतु स्वामी सेवक भाव करके उपासता है॥

प्र०—अभेद रूपता में स्वामी सेवक भाव कैसे हो शक्ता है॥

उ०—जैसे एकी मनुष्य का भी आपी आप दिन बुद्धि करके परतंत्र पामरहिनतादि भाव कल्पता है, और कभी आपी आप स्वतंत्रता स्वामीता महानतादि भाव कल्पता है। परन्तु वह दोनों कल्पना मात्र हैं। वो जैसे (देहोहम्) देह को अपने स्वरूप से अभेद मान करके अपना आत्मा जानते हुये आपी आप देह की सेवा पालन भजन करता है। तैसे ही एक रूप जानते हुये स्वामी सेवक का कल्पित व्यवहार हो शक्ता है। "एकधा बहुधा चैवदृश्यते जल चंद्रवत्" घट जल में एक चंद्र के नाना प्रतिबिम्बवत् एक ब्रह्म विष्णु शिवादि रूप से सेवकादिरुप से बहुत दृश्य है॥ इसमें गौड़ाचार्य उक्त प्रमाण है।

श्लो-कल्पयत्यात्मनात्मानमात्मादेवःस्वमायया ॥
सएवबुद्धयतेभेदानितिवेदान्तनिश्चयः ॥१॥

अर्थ—आत्मा देव अपने माया शक्ति करके अपने आत्मा को आपही अपने आत्मा करके स्वामी सेवक भाव उत्तम मध्यम भावादि कल्पता है। और वही आत्मा उन सर्व भेदों और भावों को जानता भी है, ऐसा वेदान्त का निश्चय है ॥ १ ॥

फिर यावत् काल जिस व्यवहार का अधिकार है, तावत् काल परोक्ष रूप से अभेद जानते हुये प्रत्यक्ष के निमित अधिकार को कल्पना रूप जानते हुये वर्ते॥

श्लो—उपासनादिसंसिद्धितोषितेश्वरचोदिताम् ॥
अधिकारंसमाप्यैतेप्रविश्यन्तिपरंपदम् ॥१॥

अर्थ—फिर वाचस्पति मिश्र ने भी कहा है, कि कर्म उपासनादि से अन्तः करण के शुद्धतारूप सिद्ध से संतोषित पुरुष ईश्वर प्रेरित अधिकारों को समाप्त करके परम पद मोक्ष को प्राप्त होता है ॥

फिर यह कैसे ज्ञात हो कि मैं इस कांड का अधिकारी हूं। सो कहता हूं जिस कांड में सद्गुरु सदशास्त्र के उपदेश से भी श्रद्धा विश्वास न हो वा श्रद्धा विश्वास होते हुये संशय से उस पर निश्चलता न हो तब जानना कि इस कांड से नीचे के कांड में मेरा अधिकार है॥ जैसे ज्ञान में अविश्वास से उपासना में अधिकार उपासना में अविश्वास से कर्म में अधिकार जानना चाहिये बिना अधिकार किसी कांड का आग्रह कलंक के साथ दुःख का हेतु होता है॥

इस प्रकार (आनन्द अब्धि) की प्राप्ति अनन्य भाव के निर्गुण उपासक और अभेद सगुण अहंग्रहका उपासक (भक्तों) को भी है। और निष्काम कर्म वाले कर्म काडियों को अन्तःकरण शुद्धि द्वारा (आनन्द अब्धि) की प्राप्ति है॥

पूर्व उक्त रीति से (ओंकार) का निर्नय करके जो पुरुष उपासना किया है, और करेंगे उनको (मांडूक श्रुति) उक्त फल रूप (स्वराट्) जिसको सराज भी कहते हैं, इस पद की प्राप्ति हुई है और होगी (सराट) यह है कि इस लोक के श्रुति उक्त फल स्वतंत्रता चक्र वर्तितादि सुख की प्राप्ति और अंत में विदेह कैवल्य मुक्ति सुख की प्राप्ति, जैसे जनक प्रियवर्त चूडला वाशिष्ठादिकों को प्राप्त हुआ है। जिस में प्रमाण श्रुति का है—

श्रु—"सर्वभूतस्थमात्मानंभूतानिचआत्मनि ॥
संपश्यनात्मयाजीवैसराटमधि गच्छति" ॥१॥

अर्थ—सर्व भूत चराचर दृश्य पदार्थों में आत्मा को स्थित देखता है, और सर्व भूतों को आत्मा में देखता है, जो ऐसी दृष्टि से परिपक्व हुआ

(आत्मा) वा (ओंकार) का यजन सील है वह निश्चय (सराट्) पद को प्राप्त होता है ॥ फिर कहा है—

श्लो--यस्तुद्वादशशाहस्त्रं प्रणवंजपतेअनुऽहम् ॥ तस्यद्वादशभिर्मासैः परब्रह्मप्रकाशते ॥

अर्थ—जो विलक्षण पुरुष (ओंकार) का १२ बारह हजार जाप अभेद रूप से नित्य प्रति नियम से करें और पंचीकरण के मूल्य सूत्रों का पाठ करेंगे। तिस पुरुष को १२ बारह मास में परे ब्रह्मरूप आत्मदेव प्रकाशित होगा ॥

इति श्री मत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री सरजू पारगत मझवली
राजधानी से पञ्चकोश नैऋत में श्री सरजू के तट बरहज
नग्रनिवासी श्री १०८ श्री स्वामी अनन्त जी पूज्यपाद
का अल्पज्ञ शिष्य स्वामी उमानन्द कृत वेदान्त
मुक्तावली बालबोधनी पददीपिका भाषा
भाष्यगत क्षेपक चतुर्थ भाग
अभ्यासन विधि समाप्तः
॥ इति ॥

॥ ओंकार के सर्व रूपता का कोष्टंक ॥

॥ ओ३म् ॥

३	३ मात्रा	ॐ	३ तीन कारण
ओ३म् १	अकार	अ १	मन
ओ३म् २	उकार	उ २	बुद्धि
ओ३म् ३	मकार	म ३	अहंकार
ओ३म्	३ तीनस्वर	ॐ	३ तीन अग्नि
अ १	ह्रस्व	अ १	गार्ह्यपत्य
उ २	दीर्घ	उ २	आह्वनीय
म ३	पल्लुत	म ३	दक्षिणाग्नि
ओ३म्	३ तीन वेद	ॐ	३ तीन देवता
अ १	ऋग्वेद	अ १	ब्रह्मा
उ २	यजुर्वेद	उ २	विष्णु
म ३	साम वेद	म ३	रुद्र
ओ३म्	३ तीन ऋषि	ॐ	३ तीन प्रयोजन
अ १	अग्नि	अ १	धर्म
उ २	वायु	उ २	अर्थ
म ३	सूर्य	म ३	काम
ओ३म्	३ तीन गुण	ॐ	३ तीन काल
अ १	सतोगुण	अ १	भूत
उ २	रजोगुण	उ २	भविष्यत्
म ३	तमोगुण	म ३	वर्तमान
ओ३म्	३ तीन ज्ञान	ॐ	३ तीन लिङ्ग
अ १	व्यक्त ज्ञान	अ १	स्त्री
उ २	अव्यक्त ज्ञान	उ २	पुरुष
म ३	ज्ञेय ज्ञान	म ३	नपुंसक
ओ३म्	३ तीन संधी	ॐ	तीन आत्मा
अ १	बहिस्संधी	अ १	बल
उ २	संध्य संधी	उ २	वीर्य
म ३	क्रान्त सधी	म ३	तेज
ओ३म्	३ तीन स्थान	ॐ	३ तीन स्वभाव
अ १	हृदय	अ १	ज्ञान
उ २	कंठ	उ २	ऐश्वर्य
म ३	मूर्द्ध	म ३	शक्ति
ओ३म्	३ तीन प्रज्ञा	ॐ	३ तीन व्यूह
अ १	बहि:प्रज्ञा	अ १	संकर्षण

उ २	अन्तरप्रज्ञा
म ३	घन प्रज्ञा
ओ३म्	३ तीन पद
अ १	जाग्रत्
उ २	स्वप्न
म ३	सुषुप्ति
ओ३म्	३ तीन अवस्था
अ १	शान्त 'जाग्रत्'
उ २	घोर 'स्वप्न'
म ३	मूढ़ 'सुषुप्ति'
ओ३म्	३ तीन भाग
अ १	अन्न
उ २	जल
म ३	सोम
ओ३म्	३ तीन भोक्ता
अ १	अग्नि
उ २	वायु
म ३	सूय
ओ३म्	३ संधी
अ १	प्रातः
उ २	मध्यान
म ३	सायन
ओ३म्	३ तीन क्रिया
अ १	उत्पति
उ २	स्थित
म ३	लय
ओ३म्	३ तीन कांड
अ १	कर्म
उ २	उपासना
म ३	ज्ञान
ओ३म्	३ तीन शरीर
अ १	विराट्
उ २	हिरण गर्भ
म ३	अव्या कृत्
ओ३म्	३ ब्राह्मण
अ १	होता
उ २	प्रद्युम्न
म ३	अनिरुद्ध
ओ३म्	३ तीन छन्द
अ १	गायत्री
उ २	त्रिष्टुप
म ३	वृहती
ओ३म्	३ तीन वर्ण
अ १	श्वेत
उ २	रक्त
म ३	कृष्ण
ओ३म्	३ तीन लोक वा व्याहृति
अ १	भू: 'भूलोकि'
उ २	भुवः 'पितृलोक'
म ३	स्वर 'स्वर्ग लोक'
ओ३म्	३ तीन स्वर
अ १	उदात्त
उ २	अनुदात्त
म ३	स्वरिति
ॐ	३ तीन आत्मा
अ १	स्व आत्मा
उ २	अन्तर आत्मा
म ३	पर मात्मा
ॐ	३ तीन शक्ति
अ १	क्रिया शक्ति
उ २	इच्छा शक्ति
म ३	ज्ञान शक्ति
ॐ	३ तीन शान्ति
अ १	अध्यात्म शान्ति
उ २	अधि भूत शान्ति
म ३	अधिदैव शान्ति
ॐ	३ तीन नाड़ी
अ १	इङ्गला
उ २	पिङ्गला
म ३	सुषुमुना
ॐ	त्रिपुण्ड्र
अ १	प्रथम रेखा

उ २	अध्वर्यु	उ २	द्वितीय रेखा
म ३	उद्गाता	म ३	त्रितीय रेखा
ॐ	३ तीन रुप शरीर	ॐ	३ तीन देवी
अ १	स्थूल	अ १	स्वरोसति
उ २	सुक्ष्म	उ २	लक्षिमी
म ३	कारण	म ३	दुरुगा
ॐ	३ तीन जीव	ॐ	३ तीन कर्तृआदि
अ	विश्व	अ १	कर्ता
उ २	तेजस	उ २	क्रिया
म ३	प्राज्ञ	म ३	कर्म
ॐ	३ तीन कर्म	ॐ	३ तीन पन
अ १	प्रातः स्वन	अ १	बाल
उ २	मध्यस्वन	उ २	जूवा
म ३	त्रितीय स्वन	म. ३	जरा
ओ३म्	३ त्रिभोक्तादि	ॐ	३ त्रिदेवादि
अ १	भोक्त	अ १	मनुष्य
उ २	भोज्य	उ २	देव
म ३	भोग्य	म ३	दानव
ओ३म्	३ त्रिज्ञान.दि	ॐ	३ तीन द्रष्टान्त
अ १	ज्ञाता	अ १	द्रष्टा
उ २	ज्ञान	उ २	दृष्टि
म ३	ज्ञेय	म ३	दृश्य

हे शिष्य यह जो (ओंकार) की मात्राओं का भेद स्वरुप कहा है, सो (अकार उकार मकार) इन तीन मात्राओं का विस्तार है, और समस्त जगत इन्हीं के अन्तर भूत है। तिस हेतु से " ओंकार एवेद सर्वम् " ओंकार ही यह सर्व जगत है, ॥ इति ॥

इति श्रीमटपरमहंस परिव्राजकाचार्य श्री सरजू पारगतम भवली राजधानी
से पंच कोश नैऋत में श्रीसरजू के तट बरहज नग्र निवासी श्री १०८
श्रीस्वामी अनन्त जी पूज्य पाद का अल्पज्ञ शिष्य स्वामी
उमानन्द कृत् वेदान्त सिद्धांत मुक्तावली बालबोधिनी
पददीपिका टीका भाषाभाष्य गद चतुर्थ
भाग उपासना कांड समाप्तः ॥

॥ इति ॥

——०——

॥ योग रहस्य ॥

यदक्षरंब्रह्मवदन्ति विज्ञाः सिद्धास्तुरीयंयदकर्त्त-सांख्याः ॥ तंसत्यमानन्दनिधिंस्मरामि श्रीनन्द सूनं श्रुतिभिर्विमृग्यम् ॥

श्रीगजास्यं नमस्कृत्यउमांबुद्धिप्रदायकम् ।
बहुज्ञाशहेतुनायोग रहस्यंकरोम्यहम् ॥२॥

इदानीं काल में अष्ट अंग के अभाव हुये अष्टांग योग सिद्ध नहीं होता है और योग के अभाव से मन्द अधिकारियों का चित्त शान्त नहीं होता है। और चित्त के शान्ति बिना आनन्द की प्राप्ति नहीं होती है। परंतु आनन्द के निमित्त चित्त को शान्ति और शान्ति के निमित्त "योगस्य चित्त वृति निरोधः" इस पतांजली सूत्र के फल श्रवण करके योग की अति जिज्ञासा करते हैं। और ग्रन्थ के द्वारा गुरु विहीन स्वयं अभ्यास करते है। सो गुरु विहीनता और अंगहीनतादिक दोष से रोग को प्राप्त होते हैं। और आनन्द के अतिरिक्त जीवन प्रयन्त दुःखी होते हैं। और चित्त की चंचलता अधिक हो जाती है। इस हेतु से सदा अशान्ति उलटा फल योग से पाते है ॥ फिर 'कलेश कर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः' (कलेश) अविद्या अस्मिता राग द्वेष अभिनिवेश (कर्म) अशुक्ला कृष्ण योगियों का है। और शुक्ल कृष्ण औरो को ३ हैं। "कर्मा शुक्ला कृष्णं योगिन स्त्री विधमितरेषाम्" इस योग सूत्र से सिद्ध है ॥ तिस कर्म को परिपक्वता अर्थात् उस कर्म का फल विशेष आयु का भोग तिसके संस्कार करके कलेशादियों करके स्पर्श रहित होकर पुरुष विशेष ईश्वर होता है ॥ तब शान्ति चित्त आनन्द मुक्त का अनुभव करता है ॥ ऐसे कष्ट कर्म का साधन गुरु आयु शारीरिक बल वीर्य के अभाव से यह योग दूरत्य है ॥ परन्तु अधिकारियों के जिज्ञासा को देख करके सरल साधन सरल युक्ति सरल कर्म का योग कहते है ॥ जिसमें न कोई भय है। न कोई रोग है। न कोई कर्म है। न कोई प्राणायाम है। किन्तु जो योग रूप समाधि स्वभाव से सर्व प्राणधारियों को सदा लगी है। उस पर चित्त देकर देखना है ॥ कि किस रुप की समाधि किस रूप से लगी है। इससे बहुत शीघ्र चित्त की शान्ति और आनन्द का अनुभव होता है ॥

सो देखाता हूं कि जिस हृदय रूप अन्तःकरण की वृति चित्त है। जिस चित्त का रचा हुआ स्वप्नवत यह सारा संसार है। और जिस चित्त से बन्ध मोक्ष है। 'मनैव मनुष्याणाम् कारण बन्ध मोक्षयोः ॥

अर्थात् चित्त के कल्पना से बन्ध और शान्ति से मोक्ष है ॥

तिस हृदय कमल के अष्ट दल हैं। तिस एक एक दल पर ६००-६० सौ प्राण हैं। और एक एक दलों के पत्रों में पृथिवी जल तेज वायु आकाश पंच तत्त्व हैं। तत्त्वों का भाग ये हैं कि पृथिवी तत्व ५० पल में ३०० प्राण के साथ गमना-गमन करती है। और जल तत्व ४० पल में २४० प्राण भोगता है। और अग्नि तत्व ३० पल में १८० प्राण भोगता है। और वायु तत्त्व २० पल में १२० प्राण से भाग करता है। और आकाश तत्व १० पल में ६० प्राण का भोग करता है॥ यह एक एक दलों का भोग हैं। और पांचों तत्वों २॥ दंड एक एक दल पर स्थित होकर ६०० प्राण भोगते है। और ८ आठों दलोंपर २० दंड में एक आवृति नाम एक चक्र देते हैं। तिसमें पृथिवी का भाग ८ अष्ट दलों में ६ दंड ४० पल है। जिसमें २४०० प्राण का भोग करती है॥ और जल तत्व का भोग ५ दड २० पल में १६२० प्राण भोगता है॥ और अग्नि तत्व ४ दंड में १४४० प्रोगता है॥ और वायु तत्व २ दंड ४० पल में ६६० प्राण भोगता है। आकाश तत्व १ दंड २० पल में ४८० प्राण भोगता है वह अष्ट दलों का भाग हैं॥

सो युक्त २० दंडों में अष्ट दलों पर पंच तत्वों का भोग युक्त ७२०० प्राणों से होता है॥ फिर उन तत्वों की दिन रात ६० दंडों में तीन आवृति हृदय कमल पर होती है॥ जिस॰ प्रातः काल से २० दंड सतोगुण की आवृत्ति और २० दंड से उपरान्त ४० दंड प्रयन्त रजोगुण की आवृत्ति और ४० से उपरान्त प्रात: प्रयन्त ६० दंड तमोगुण की आवृति होती हैं॥ तिसमें ६ दं० ४० प० सतोगुण भाव ६ दं ४० प० रजोगुण भाव ६ दं० ४० प० तमो गुणभाव में २४०० दो २ हजार चार २ सौ पृथिवी का प्राण भोग होता है॥ इसी प्रकार पांचों तत्वें तोनों गुणों में अपने २ बराबर भाग को भोगते हैं॥ जिसका जोड २२६०० प्राणें ६० दंडों में भोगते हैं॥ सो प्राण एक पत्र से प्रवेश और एक पत्र से गमन करता है। जिसकी समय २॥ दंड और ६०० प्राण होते हैं। तिस में सतोगुण की आवृति में प्रातः काल सूर्य उदय से ५० पल पृथिवी तत्व में १५० प्राण एक पत्र से प्रवेश करता है और १५० प्राण दूसरे पत्र से गमन करता है॥ और ५० प० के उपरान्त ४० प० जल तत्व प्राण एक पत्र से प्रवेश और दूसरे पत्रसे १२० गमन करता है॥ फिर ३० प० अग्नि। फिर ५०-४० युक्त ६०—३० युक्त १२० प० के उपरान्त २० प० वायु। फिर १४० प० के उपरान्त १० प० आकाश ३० प्राण एक पत्र से प्रवेश करता है और दूसरे पत्र से ३० प्राण गमन करता है॥ सो कमल में आगे देखावेंगे॥ इस प्रकार १५० प० का २॥ दंड में पांचों तत्वें एक दल पर भोग कर दूसरे दल पर भी प्रथम पृथिवी से आरम्भ करके पांचों क्रम २ से अष्ट दल पर चक्र देते हैं॥ प्रातःकाल से २॥— ॥ दंड पर पृथिवो आदि तत्वों का चक्र कमल को एक आवृति २० दंड में ८ अष्ट वार आता है। इसी प्रकार पांचों तत्वों का क्रम जान लेना। और २० दंड के उपरान्त दूसरो आवृति रजोगुण में और ४० दंड के उप-

रान्त सूर्य उदयपर्यन्त २ तीसरी आवृत्ति तमोगुण में पृथिवी से आरम्भ करके पंच तत्वों की आवृत्ति अष्ट दलों पर पूर्ववत क्रम से जान लेना चाहिये ॥

सो ह्रस्व संयुक्त वर्णों से प्राण का प्रवेश होता है । और दीर्घ स्वर संयुक्तवर्णों से गमन होता है ॥ तिसे हृदय कमल अष्ट दल के तीन आवृत्ति से २४ पक्ष होते हैं । और दो पक्ष का एक मास होता है ॥ (अं) स्वर प्राण के प्रवेश में स्थित रहता है । और (अः) विसर्ग स्वर प्राण के गमन में स्थित रहना हैं । यह दोनों स्वर समय से शून्य हैं । सो प्राण का प्रवेश गमन बहुत सूक्ष्म है । सो कहा है "प्रश्ने श्वासान्तर्गमेचेज्जयः स्याद्भङ्गो निर्यात्यत्र सूक्ष्म तदेतत् ।' इति समरसारः ॥ अर्थात् प्रश्न में श्वासा के अन्तर गमन में राजा की जय हो और श्वासा के बाह्य पराजय हो । इस हेतु से प्राण नाम श्वासा सूक्ष्म है जाना नहीं जाता हैं ॥

सो प्राण कितने काल को कहते हैं । सो सूर्य सिद्धान्त में लिखा है ॥

"दशगुर्वक्षरोच्चारः प्राणइत्याभिधीयते ॥ षड्भिः प्राणैर्विनाडी स्यात्तत् षष्ट्यानाडकः स्मृताः ॥१॥

अर्थात् दशचार गुरु अक्षर के उच्चारण के समय प्रमाण को प्राण कहा है ।और षष्ट ६ प्राण का एक विनाडी पल होता है और ६० पल का एक दंड होता है ॥

नाडी षष्ट्यातु नाक्षत्रमहोरात्रं प्रकीर्तितम् ॥
तत्रिंशता भवेन्मासः सावनार्कोदयैस्तथा ॥२॥

अर्थात् ६० दंड का एक नक्षत्र व दिन रात्रि होती है । और ३० दिन का का मास सावन शंकान्तिआदिक होतो हैं ॥ और १२ मास का बर्ष होता है ॥

यह देखाने का तात्पर्य ये है कि दिन रात में २१६०० प्राण का गमनागमन होता है । तिस में भि एक दंड में ३६० एक घंटे में ६०० और २॥ प० १ मिनट में १५ और १ प० में ६० प्राण १० विपला ४ सेकंड में एक प्राण का गमनागमन होता है ॥ अर्थात् कोई समय प्राण के गमनागमन से शून्य नहीं हैं ॥ सो प्राण शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म आत्म हस आ अजपा जप अखंड नित्य निरन्तर करता रहता है ॥ सो लिखा है—

श्लो०—षट्शतानि दिवारात्रौसंहस्रं त्वेकविंशतिः ॥
हंसहंसेतिहंसेतिजीवोज़पतिनित्यशः ॥१॥

अर्थात्—दिन रात्रि में २१६०० श्वासा के द्वारा हंस हंस हंस इस प्रकार नित्य निरन्तर जोव जपता है ॥ अर्थात् (हं) शब्द जब प्राण अन्तर प्रवेश करता है ॥ तब ग्रहण करता है । जब बाहर आना चाहता है । तब विसर्ग

(स) वर्ण ग्रहण करना है। दोनों वर्णों और (अं) मात्रा से (हंस) पद होता है। यहां अजपा जाप है॥

सो यह चित्त और हृदय कमल अपंचीकृत् भूतों के सतोगुण का कार्य है। और प्राण रजोगुण का कार्य होने से क्रिया शक्तिमान है। और प्राण की श्रेष्ठता श्रुति में प्रसिद्ध है। "भगवन्नेधित्वं नः श्रेष्ठोऽसि मोत्क्रमीरिति" अर्थ सर्व इन्द्रियां प्रार्थना करते भये कि हे प्राण तू हम लोगों में श्रेष्ठ हो इस शरीर से बाहर मत हो॥ इस हेतु से सब इन्द्रियां और चित्तादि प्राण के आधीन कृया संचार करते है। इस हेतु से चित्त प्राण के संचरण से संचरित और प्राण के निरोध से निरोध हैं। प्राण का निरोध इदानीं काल में दुस्तर है सो हेतु पूर्व में कह आये हैं। और चित्त सदा प्राण के साथ गमन तो करता है। परन्तु प्राण के कृया पर ध्यान अविवेकता से प्राण के कृया के अज्ञानता से नहीं देकर स्वतंत्र कार्य करता होकर कार्यों का संस्कार स्थित करके अशान्त चञ्चल हो बहिर मुख हो रहता है॥

इस हेतु से अधिकारियों को चाहिये कि बालब्रह्मचर्यता वा नैष्ठिक ब्रह्मचर्यता का पालन अल्प भोजन सातग्री और एकान्त निरजन देश जहां शब्दादि विषय का संम्बन्ध न हो उस देश का सेबन करे और सर्व का त्याग करके सिद्ध आसन से बैठ कर दृष्टि को नाशा के अग्रभाग में स्थित कर चित्त को प्राण के कृया उच्चारण पर स्थित करके चित्त से देखे सुने कि प्राण (हंस) शब्द किस रीत से उच्चारण करता है॥

सो हृदय कमल के मध्य में (हंस) जो शुद्ध निर्विकार ब्रह्मरूप तुरीय साक्षी आत्मदेव सो वास करता है॥ और हृदय कमल को वृति संकल्पात्मक है॥ और प्राण आत्मदेव के चारों दिशा में चक्र देता हुआ गमनागमन करता है॥ अर्थात् रक्षक है जो कि कभी नहीं त्यागता है॥ क्योंकि प्राण के त्यागने से जीवात्मा भी शरीर त्याग कर देता है॥ और बुद्धि बन्दोगण है जो विवेकी बुद्धि सो आत्म देव राज्य को यथार्थ रूप से ज्ञात कराती है। और चित्त मंत्री है। परन्तु बाल रूप है इस हेतु से नित्य प्रति चित्त आत्मदेव के समीप सोता है। और जाग कर प्राण के साथ बाहर गमन करता है। फिर प्राण तो सदा (हं) को ग्रहण करके प्रवेश करता है। और (स) को ग्रहण करके द्वादश अंगुल प्रमाण साधारण बाहर को जा फिर (हंस) चिन्ता से बहुर आता है॥ और चित्त बाल बुद्धि आत्मदेव के आनन्द को न जानता हुआ देश और विषयों में भ्रमण करता हुआ लोलुप हो अशान्त रहता है॥

इस हेतु से अधिकारी जनों को सतसंग और गुरु सतशास्त्र से आत्मदेव को जानकर विवेकी बुद्धि से चित्त बालक को लालन करे—

अथात्—अशुभ वासनाओं में प्रवेशित चित्त को शुभ वासना जो मोक्ष मार्ग का साधनता में अवतरन करे। और पुरुषार्थ प्रयत्न करके शुभ मार्ग में चित्त को जोड़े॥ १॥ फिर अशुभ से चलित चित्त चञ्चलता को प्राप्त हुआ

तिससे इतर शुभ के प्रति पुरुषार्थ प्रयत्न करके चित्त बालक को लालन करके जोड़े ॥ ऐसा श्रुतियों का प्रमाण है ॥ इति मुक्तिक श्रुतिः ॥ २ ॥

इस प्रकार चित्त को प्राण के साथ २ गमनागमन करावे और बुद्धि से चित्त को आत्मानन्द बोधन करावे। तब चित्त प्राण के उच्चारण को श्रवण करके आप शनैः २ प्राण के साथ जाते आते हुए भी प्राण के उच्चारण (हंस) शब्द पर स्थित होता है। फिर काल पाकर शान्त हो हृदय कमल के मध्य आत्म देव के चरणों में लीन होता है। जोकि कमल के अष्ट दल पर पवन से भी अधिक वेग कर घूमता था और बहिर मुख था ॥ सो लोमस ने कहा है—याही मन रोकत कोई सन्ता ॥ पकड़ी लगावत चरण अनन्ता ॥१॥ इसीको अजपा जाप कहते हैं। और चित्त के शांति और शुद्धता को ही समाधि कहते हैं। और चित्त के निरोध बशता को ही योग कहते हैं। सो सर्व इस अजपा से भी सिद्ध हो जाते हैं ॥ यह साधन (अहंब्रह्मास्मि) महा वाक्य दि और (ॐ) और सर्व प्रकार के अभ्यासों से सरल और उत्तम है ॥ क्योंकि यह कल्पना रहित स्वाभाविक अभ्यास है। जोकि ज्ञान अज्ञान बाल वृद्ध सर्व प्राणधारियों को होता है। परन्तु जिसको ज्ञात हुआ उसको इस करके आनन्द और मोक्ष है। जिसको अज्ञात है उसे नहीं है। विशेषता अभ्यासी अनभ्यासी का है ॥ और अन्य अभ्यास कल्पना करके होते हैं ॥ और फिर त्याग हो जाते हैं। और यह न ग्रहण है न त्याग है वे यत्न सदा हुआ करता है। चित्त को मात्र प्राण और शब्द (हंस) के प्रतिस्थित करने का यत्न है ॥ और औरो में स्थिति और शब्द पदों का कल्पना करा करके अभ्यास कराने का यत्न करना पड़ता है ॥ इस हेतु से जो चौ-साधन संपन्न अधिकारी इसका अभ्यास किये हैं उनको अति शान्ति प्राप्त हुई है। और जो करेंगे उन्हीं के चित्त की शान्ति शीघ्र होगी और शान्ति से आनन्द की प्राप्ति होगी ऐसा अनुभव है। और ऋषियों का उक्त है और प्रतिज्ञा है ॥ और जो पूर्व में हृदय कमल कथन किया हैं उस को दिखाते हैं। और इस ग्रन्थ में जो पिङ्गल और वर्ण पद मात्रा शब्द पदच्छेद अन्वय अर्थ विषय इत्यादियों की त्रुटी अशुद्धता हो उसको विद्वद् जनों महात्माओं से प्रार्थना है कि सुधार लेंगे। क्योंकि मैं पिङ्गलादियों से रहित अल्प बुद्धि हूं ॥ हरिः ॥ ओ३म् ॥

इति श्री मत्परमहंस परिब्राजकाचार्य श्री सरजू पारगत मझवली
राजधानी से पञ्चकोश नैऋत में श्री सरजू के तट बरहज
नग्रनिवासी श्री १०८ श्री स्वामी अनन्त जी पूज्यपाद
का अल्पज्ञ शिष्य स्वामी उमानन्द कृत वेदान्त
मुक्तावली बालबोधनी पददीपिका भाषा
भाष्यगत क्षेपक चतुर्थ भाग
योग रहस्य समाप्तः
॥ इति ॥

॥ आरती ॥

आरती सदाइ होत सन्तन घटमाहीं ।
ब्रह्म जोत प्रगट भई विगसत दरसाई ॥
॥ आरती सदाई होत संतन घटमाहीं ॥
वेद के वाजन्त्र वाजे ज्ञान धूप धुकन लागे ।
समता चित छाय रही जिभ्यागुन गाई ॥
॥ आरती सदाइ होत संतन घटमाहीं ॥
प्रेम की जबवाती लागी सकल ब्रह्मजोत जागी ।
इत उत दुरमात भागी एक में समाई ॥
॥ आरती सदाई होत सन्तन घट माहीं ॥
सोहं धुनी संख पूरे भेद भ्रम किये चूरे ।
इत उत चिद स्वरूप आतम दरसाई ॥
॥ आरती सदाई होत सन्तन घटमाहीं ॥
कहत कवि त्रिलोक दास आश्चर्य गुरू कियो
प्रकाशा अति हुलास होत जहां जनम मरन
नाहीं ॥ ॥ आरती सदाई होत सन्तन घटमाहीं ।

॥ हृदय कमल ॥
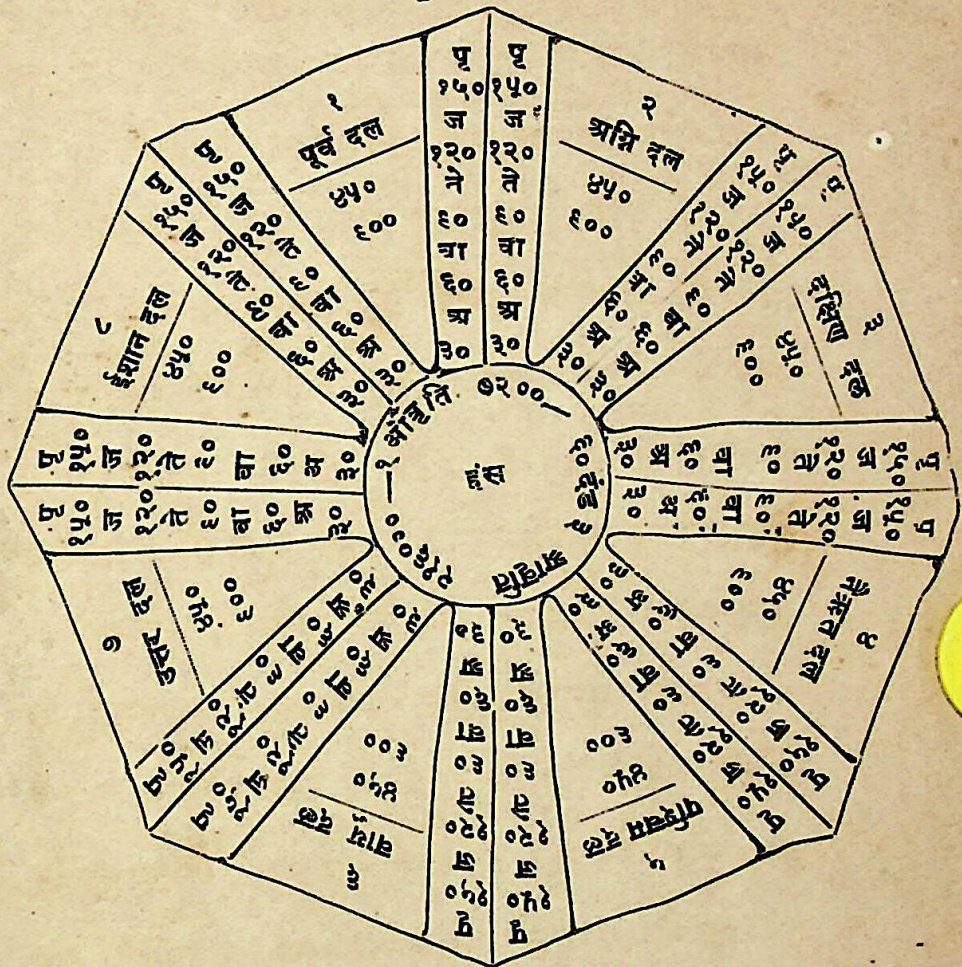
इति श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीसरजू पारगत मझौली राजधानी से पंचकोश नैऋत्य में श्रीसरजू के तट बरहज नग्र निवासी श्री १०८ श्रीस्वामी अनन्त जी पूज्य पाद का अल्पज्ञ शिष्य स्वामी उमानन्द कृत् वेदान्त सिद्धांत मुक्तावली बालबोधिनी पदद्दीपिका टीका भाषाभाष्य गद्य चतुर्थ भाग योग रहस्य समाप्तः ॥

॥ इति ॥

—o—